गंगा-पुस्तकमाला का अट्ठासीवाँ पुष्प

जुझार तेजा

लेखक
मेहता लज्जाराम शर्मा

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२९ ३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

द्वितीयावृत्ति

सजिल्द १)] सं० १९८९ वि० [सादी ॥)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

१

भूमिका

जब यह पोथी तनिक-सी है, तब इसकी भूमिका भी ज़रा-सी होनी चाहिए और फिर जब बुरी या भली पुस्तक प्यारे पाठकों के सामने है, तब लम्बी चौड़ी भूमिका लिखकर दीपक को दीपक लेकर दिखाने से लाभ भी क्या? ख़ैर, जैसी कुछ है यह है। बुरी है, तो यह है और भली है, तो यह। जिन लोगों की कृपा-दृष्टि में इस अकिंचन लेखक की पुस्तकों ने थोड़ा-बहुत स्थान पा लिया है, अथवा जो समालोचक महाशय हैं, वे इस छोटी सी पुस्तिका का आद्योपान्त अवलोकन कर दूध का-दूध और पानी का पानी अलग कर देनेवाली हंस-बुद्धि से उसके गुणों की अथवा दोषों की मुझे यदि सूचना देने का अनुग्रह करें, तो मेरा सौभाग्य!

इस पुस्तक में कितनी ही बातें असंभव सी हैं। मेरी आस्तिक बुद्धि भी उन्हें पूर्ण रूप से ग्रहण नहीं करती है, किंतु जब पश्चिमीय साइंस अनेक प्राचीन असंभव बातों को संभव कर रहा है, और जब थोड़ा-सा मनन करने पर अँगरेज़ी शिक्षा का पदार्थवाद (Materialism) भारतवर्ष के चिरकालीन परमार्थवाद (Spiritualism) के चमत्कारों के आगे नष्ट हुआ जा रहा है, तब कौन कह सकता है कि किसी दिन ये बातें सत्य घटना के रजिस्टर में दर्ज न हो जायँगी। आरंभ हो गया है। कुछ अर्से तक मार्ग प्रतीक्षा करने की आवश्यकता है।

यह पोथी उपन्यास नहीं है, सत्य घटना-सूचक है। इसमें भाषा मेरी है और कथा का आधार जनश्रुति। "आधार" इसलिये कि पुस्तक को रोचक करने के लिये मैंने कहीं कहीं इसे रंग दे दिया है; किंतु इसमें संदेह नहीं कि मूल घटनाओं का, तेजा के उपासकों के उद्देश्य का, मैंने कहीं परिवर्तन नहीं होने दिया है।

जोधपुर निवासी सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक मेरे माननीय मित्र मुंशी देवीप्रसाद का अवश्य ही मैं ऋणी हूँ, जो समय समय पर रचना के लिये मुझे ऐतिहासिक सामग्री देने को सदा तैयार रहते हैं। इस लघु पुस्तिका में भी मैंने थोड़ा बहुत मसाला उनसे प्राप्त किया है। इस पोथी का आधार तेजा के उपासकों के गायन पर है और यह बूँदी के अंतर्गत निज़ामत देई के ग्राम दौलतपुरा के पटेल श्रीकृष्णा मीने से प्राप्त हुआ है। उक्त पटेलजी का भी मैं कृतज्ञ हूँ। उनका अनुरोध है कि पाठक महाशय उनका भक्ति-पूर्वक "राम राम" ग्रहण करें।

आबू पहाड़,
ज्येष्ठ शुक्ला ४,
संवत् १९७१

विनीत
लज्जाराम शर्मा

द्वितीय संस्करण

मेरे श्रद्धेय मित्र और "नागरी प्रचारिणी सभा" के जीवन-सर्वस्व राय साहब बाबू श्यामसुदरदासजी बी० ए० के अनुग्रह से "जुझार तेजा" पहले सवत् १९७१ में सभा की मासिक पत्रिका में और लगे हाथ पुस्तकाकार छपा, और यह उन्हीं की कृपा का प्रतिफल है कि सभा की प्रबध समिति ने सख्या ७४/३५, १ वैशाख, सवत् १९८४ के पत्र में इसका द्वितीय सस्करण अन्यत्र प्रकाशित कराने की आज्ञा मुझे प्रदान की। गगा पुस्तकमाला के स्वामी श्रीयुत दुलारेलालजी भार्गव के अनुग्रह से इसकी दूसरी आवृत्ति आज हिंदी-जनता के सामने है, और है बड़ी सजधज के साथ, सचित्र। इन दोनों महाशयों को और राय साहब द्वारा सभा को मेरा हार्दिक धन्यवाद है।

मेरा वास्तव में सौभाग्य है कि मेरी पुस्तकों में "जुझार तेजा" का हिंदी-जनता ने सामान्य की अपेक्षा विशेष आदर किया। कोटा, राजपूताना के महाशय गौरीलालजी वॉचमेकर और बुकसेलर ने "एक हाड़ौती-हृदय" के नाम पर खड़ा बोली के पद्य में एक सचित्र सस्करण प्रकाशित किया और नाम इसका "वीर तेजा" रक्खा। यह सस्करण सवत् १९७७ में प्रकाशित हुआ था। बूँदी निवासी मेरे मित्र स्वर्गीय मुंशी रघुवरदयालुजी के आयुष्मान् पुत्र बाबू प्रभुदयालुजी ने इसका एक उर्दू-सस्करण "जाँ निसार तेजा" के नाम से प्रकाशित किया। ख़ूबी यह है कि केवल [illegible] के सिवा बाबू साहब ने कहीं एक [illegible] ों महाशयों का भी मैं कृतज्ञ ह[illegible]

"जाँ निसार [illegible]

द्वितीय संस्करण

मेरे श्रद्धेय मित्र और "नागरी प्रचारिणी सभा" के जीवन-सर्वस्व राय साहब बाबू श्यामसुंदरदासजी बी० ए० के अनुग्रह से "झुंझार तेजा" पहले संवत् १९७१ में सभा की मासिक पत्रिका में और लगे हाथ पुस्तकाकार छपा, और यह उन्हीं की कृपा का प्रतिफल है कि सभा की प्रबंध समिति ने संख्या ५६, १ वैशाख, संवत् १९८४ के पत्र में इसका द्वितीय संस्करण अन्यत्र प्रकाशित कराने की आज्ञा मुझे प्रदान की। गंगा पुस्तकमाला के स्वामी श्रीयुत दुलारेलालजी भार्गव के अनुग्रह से इसकी दूसरी आवृत्ति आज हिंदी-जनता के सामने है, और है बड़ी सजधज के साथ, सचित्र। इन दोनों महाशयों को और राय साहब द्वारा सभा को मेरा हार्दिक धन्यवाद है।

मेरा वास्तव में सौभाग्य है कि मेरी पुस्तकों में "झुंझार तेजा" का हिंदी-जनता ने सामान्य की अपेक्षा विशेष आदर किया। कोटा, राजपूताना के महाशय गौरीलालजी वॉचमेकर और बुकसेलर ने "एक हाड़ौती हृदय" के नाम पर खड़ी बोली के पद्य में एक सचित्र संस्करण प्रकाशित किया और नाम इसका "वीर तेजा" रक्खा। यह संस्करण संवत् १९७७ में प्रकाशित हुआ था। बूँदी निवासी मेरे मित्र स्वर्गीय मुंशी रघुवरदयालुजी के आयुष्मान् पुत्र बाबू प्रभुदयालुजी ने इसका एक उर्दू-संस्करण "जाँ निसार तेजा" के नाम से प्रकाशित किया। ख़ूबी यह है कि केवल अक्षरांतर के सिवा बाबू साहब ने कहीं एक शब्द तक इसमें नहीं बदला है। इन दोनों महाशयों का भी मैं कृतज्ञ हूँ।

"जाँ निसार तेजा" के अंत में बाबू साहब ने मेरे श्रद्धेय मित्र

स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजी का एक निबंध, जो लाहौर के उर्दू मासिक पत्र "शिव शम्भु" में प्रकाशित हुआ था, उद्धृत किया है। मुंशीजी-लिखित ऐतिहासिक तथ्य जितना पुस्तक के कलेवर में आ चुका, उसे यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं, किंतु उससे इतना विशेष विदित होता है कि "तेजाजी की औलाद अब तक खड़ताल (मारवाड़) में निवास करती है। तेजा के पूर्वपुरुष खींची राजपूत थे। उनमें से एक व्यक्ति शहाबुद्दीन बादशाह की सेना के भय से जाटों में मिल गया था।" मुंशीजी के मत से तेजा से युद्ध में परास्त होनेवाले मेरवाड़े के मेर थे। उनसे ही विजय पाकर यह गाएँ छुड़ा लाने में घायल हुआ। गूजरों की इसने गाएँ छुड़ाई थीं, इसलिये वे लोग इसकी मरहम पट्टी करने लगे। इसने कहा—"तुम कहाँ तक मेहनत करोगे। मेरे जिस्म में तो ज़बान के सिवा कोई जगह ज़ख़्म से ख़ाली नहीं है।" यह कहकर इसने ज़बान दिखलाई। इतने ही में एक साँप आया और उसने ज़बान में काट खाया। मुंशीजी के लेख में और गाने वालों की रचना में परिणाम एक होने पर भी पृथ्वी आकाश का-सा अंतर है। कौन कह सकता है कि वास्तविक घटना किस प्रकार थी। गानेवालों की रचना तब से अब तक ज्यों की-त्यों चली आ रही है, और संभव है कि मुंशीजी का लेख उनकी खोज का परिणाम हो। मुंशीजी-जैसे श्रद्धेय विद्वान् पर आस्था न रखना मेरे जैसे मित्र को शोभा नहीं देता, किंतु इतना अवश्य है कि यदि उन्होंने साथ ही कुछ प्रमाण दिया होता, तो अच्छा था। इस सूरत में "सीने बसीने" चली आनेवाली आख्यायिका को मैं असत्य नहीं ठहरा सकता। इतना अवश्य है कि उनके लेख का आधार मारवाड़ की दंतकथा है, और मैं कहता हूँ हाड़ौती की जनता के गायन के आधार पर।

बूँदी, राजपूताना
भाद्रपद शुक्ला ९, १९८९ वि०

लज्जाराम मेहता

जुझार तेजा

पहला अध्याय

चरित्र में चमत्कार

जुझार तेजा का नाम किसी इतिहास में नहीं है। उसके पैदा होने के साल-संवत् का भी अभी तक किसी को पता नहीं है। यहाँ के पढ़े-लिखे विद्वान् जब उसके चमत्कारों को वाहियात ढकोसला समझते हैं, जब कि उनकी उपेक्षा से भारतवर्ष के इतिहास का एक बहुत बड़ा खज़ाना बड़े-बूढ़ों के मन-मंदिर में छिपा हुआ है, जब कि प्राचीन वीरों, महात्माओं और विद्वानों का चरित्र-संग्रह परंपरा से बाप-दादों की धरोहर में मिलने पर भी हमारी बेपरवाही की आँधी के झोंकों से दिन-दिन नष्ट होता चला जा रहा है, अथवा हमारी कृतघ्नता की कड़ी धूप से दिन-दिन क्षीण होता जा रहा है, तब यहाँ के इतिहास में तेजा जुझार का वर्णन न हो, तो आश्चर्य नहीं, किंतु राजपूताने की "दंत-कथा" में तेजा का आसन ऊँचा है। उसकी असाधारण बहादुरी, उसका अप्रतिम साहस,

जुझार तेजा



तेजा ने अपनी जीभ फैलाई, और तब नागराज ने तेजा की जीभ का खून पीकर अपना कलेजा ठंडा किया।

(पृष्ठ-संख्या ६२)

Ganga Fine Art Press, Lucknow

जुझार तेजा

पहला अध्याय

चरित्र में चमत्कार

जुझार तेजा का नाम किसी इतिहास में नहीं है। उसके पैदा होने के साल-सवत् का भी अभी तक किसी को पता नहीं है। यहाँ के पढे-लिखे विद्वान् जब उसके चमत्कारों को वाहियात ढकोसला समझते हैं, जब कि उनकी उपेक्षा से भारतवर्ष के इतिहास का एक बहुत बड़ा खजाना बड़े-बूढों के मन-मदिर में छिपा हुआ है, जब कि प्राचीन वीरों, महात्माओं और विद्वानों का चरित्र-सग्रह परपरा से बाप-दादों की धरोहर में मिलने पर भी हमारी बेपरवाही की आँधी के झोकों से दिन-दिन नष्ट होता चला जा रहा है, अथवा हमारी कृतघ्नता की कड़ी धूप से दिन-दिन क्षीण होता जा रहा है, तब यहाँ के इतिहास में तेजा जुझार का वर्णन न हो, तो आश्चर्य नहीं, किंतु राजपूताने की "वृत-कथा" में तेजा का आसन ऊँचा है। उसकी असाधारण बहादुरी, उसका अप्रतिम साहस,

उसका अद्वितीय प्रतिज्ञापालन, उसकी असीम सत्य-निष्ठा और उसका अनुकरणीय आत्मविसर्जन राजपूताने के लाखों आदमियों के हृदय की पट्टी पर दृढ़ता की लेखनी से चिर-स्थायी है। जुझार तेजा पढ़ा-लिखा नहीं था, वह उन वीर राजपूतों में से नहीं था, जो अपने असामान्य गुणों को दुनिया के इतिहास में सदा के लिये अमर कर गए हैं, और वह उन जाटों में से भी नहीं था, जिन्होंने भारतवर्ष में एक नहीं, अनेक राज्य स्थापित करके अपना नाम वीरों की फिहरिस्त में लिखवा लिया है।

तेजा जाट एक साधारण खेतिहर था। इस बात का कहीं पता नहीं लगता कि उसने कभी किसी उस्ताद से हथियार चलाना सीखा हो, किंतु उसकी असीम प्रतिभा ने उसका नाम अमर कर दिया। लोग देवताओं की तरह उसकी पूजा करते हैं। जब राजपूताना के लाखों आदमियों को विश्वास है कि उसका नाम लेकर "हसी" बाँध देने पर साँप का काटा हुआ मरता नहीं है, तब वह अवश्य पूजने योग्य है। उसने यह साबित कर दिया है कि पूजन में जाति-पाँति की उच्चता की आवश्यकता नहीं है। चाहे ब्राह्मण हो अथवा चमार ही क्यों न हो—दुनिया में आदर गुणों का है। अथवा एक साधारण से भी साधारण मनुष्य को ऊँचा बनने के लिये

तेजा के-से गुण ग्रहण करने की आवश्यकता है। पुराणों में जो नीचे से ऊपर को पहुँचे हैं, वे किसी विश्वविद्यालय की डिगरी लेकर नहीं। मनुष्य के ऊपर चढ़ने के लिये तप चाहिए, और जिनमें तप होता है, उनको ऊँचा बनने की आवश्यकता नहीं है। तेजा एक साधारण किसान—एक सामान्य जाट—होने पर भी ब्राह्मण-क्षत्रियों से पुजा जाता है, वह अपढ़ होने पर भी विद्वानों का वंदनीय है, और वह किसी समय मनुष्य-देह धारण करने पर भी अब देवता है।

हिंदी के सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक जोधपुर-निवासी हमारे गौरवास्पद मुंशी देवीप्रसादजी ने अपनी खोज से पता लगाया है कि—

"जाटों में तेजा धौलिया क़ौम का खड़नाल परगने नागौर राज्य जोधपुर का रहनेवाला था। उसका विवाह गाँव पनेर राज्य किशनगढ़ में हुआ था। जब वह अपनी स्त्री को लेने पनेर गया, उस समय वहाँ के गूजरों की गाएँ घेर-कर मीने लोग ले जा रहे थे। गूजरों की पुकार जब किसी ने नहीं सुनी, तब तेजा उनकी मदद पर चढ़ दौड़ा। वह लड़-कर उनसे गाएँ अवश्य छुड़ा लाया, परंतु वह भी स्वयं बहुत घायल होकर गिर पड़ा। वहाँ एक साँप बैठा था। उसने उसकी ज़बान पर काट खाया और इस तरह

जब वह मर गया, तो उसकी स्त्री उस पर सती हो गई।"

राजपूताने में ऐसा कोई गाँव नहीं, जहाँ भाद्र-शुक्ला १० को तेजा का पूजन न होता हो। पूजन होता है "डसी" काटने के लिये। ढोलक पर अलगोजे बजा-बजाकर लोग उसे पहले खूब रिझा लेते हैं, फिर उसका पूजन करके तब "डसी" काटते हैं। साल-भर के किसी दिन, किसी समय, किसी अवस्था में मनुष्य को, चौपाए को, किसी को चाहे जैसे महा भयकर जहरीले साँप ने डस लिया हो, उसके घरवाले, संगी-साथी अथवा अड़ोसी-पड़ोसी दवा के लिये किसी अस्पताल में दौड़े नहीं जायँगे, किसी वैद्य से अथवा किसी हकीम से जाकर यह नहीं कहेंगे कि "हमें दवा दो"। और जब दुनिया में अभी तक ऐसी "रामबाण" दवा का आविष्कार ही नहीं हुआ, अथवा हुआ भी तो उसके आगे अज्ञानाधकार का परदा पड़ा हुआ है, अथवा उन लोगों के लिये हर जगह सुलभ नहीं, तब दौड़कर जाने से, किसी से दवा माँगने से लाभ ही क्या? बस वे लोग उसी समय चाहे जिसके सिर का साफ़ा, पगड़ी अथवा और कपड़ा लेकर उसे लबाई की ओर फाड़ते हैं। फाड़कर उसे थोड़ा-सा बटते हैं, और तब "जय तेजा राजकुमार! तेजाजी की जाय!" कहकर उस बीमार के

गले में बाँध देते हैं। लाखों का विश्वास है कि रोगी मरने नहीं पाता। उसका जहर उस समय अवश्य "छूमतर" हो जाता है। उस समय इतना जरूर करते हैं कि रोगी को एक दिन रात सोने नहीं देते। जहर यदि जोरदार हुआ, तो "बाबा तेजाजी" की मन्नत भी मानते हैं। वह कपडा, जो "डसी" के नाम से प्रसिद्ध है, यदि भाद्रपद शुक्ला १० से पहले काट डाला जाय अथवा टूट पड़े, तो सर्पदंश से महीने, दो महीने अथवा आठ-दश महीने तक भी रोगी के मर जाने का भय है। इसलिये उस "डसी" की खूब रक्षा करनी चाहिए।

बस भाद्रपद शुक्ला १० के दिन उस रोगी को लेकर "डसी" काटने के लिये तेजाजी के "देवल" पर जाते हैं। वह रोगी वास्तव में किसी दिन रोगी अवश्य था, किंतु आज हट्टा कट्टा तन्दुरुस्त है। उसके नस में भी रोग का नाम नहीं। वह जेठ की दुपहरी में खूब हल जोतता है, सावन की झड़ियों में घंटों तक अपने शरीर पर मेह झेलकर निरानी करता रहता है, और जाड़ों की रात में जंगल में पडे रहने पर भी उसे कभी जुकाम नहीं होता है। जिस व्यक्ति को विषधर सर्प ने काट खाया था, उसकी यह वर्ष-भर के तीन सौ उनसठ दिनों की दिनचर्या है, किंतु भाद्रशुक्ला १० के दिन एक बार फिर उसे रोगी बनना पडता है। यह दशा यदि

केवल मनुष्य की हो, तो कहा जा सकता है कि यों ही ढोंग करता है अथवा साँप के भय ने उसे विकल कर दिया है, किंतु गाय-बैलों को, घोड़े-गदहों को, भैंसों को "डसी" काटते ही साँप का जहर चढते देखा गया है। दिनों पूर्व—महीनों पहले आदमी अथवा जानवर की जो दशा साँप के काटने पर हुई थी, वही तेजाजी की मूर्ति के सामने भाद्रपद शुक्ला १० के दिन विद्यमान है। वैसा ही जहर का चढाव, और वैसी ही लहरें आना। ज़ेर "डसी" काटते समय चार आदमी उसे इस तरह पकड़े रहते हैं कि वह गिरने न पावे। "गिरा सो गया" ही लोगों का सिद्धात है। नीम के मौर से तेजाजी की मूर्ति के स्नान के जल को छिड़के यही उस समय इलाज है। बस, यों तेजाजी के "देवल" की सात प्रदक्षिणा करते-करते वह भला-चगा हो जाता है। ऐसा लाखों आदमियो का विश्वास है। इसी विश्वास से, इसी श्रद्धा से, वे "जुझार तेजा" का पूजन करते हैं, और "जहाँ विश्वास है, वहीं विकाश है।" इस सिद्धात से उनकी कामना पूर्ण होती है। वे यहाँ तक मानते हैं कि तेजाजी के मदिर के निकट कहीं-न-कहीं एक श्वेत सर्प अवश्य रहता है। कितने ही लोग कहते हैं कि हमने उसके दर्शन किए हैं। लोगों के सिद्धात के अनुसार यही

तेजाजी हैं। और, जब लाखों आदमी उनसे कार्य की सिद्धि पाकर काल के चंगुल से अपने प्राणों को बचानेवाले, अपने स्वजनों की रक्षा करनेवाले हैं, हजारों गाँवों में उनकी मूर्तियाँ स्थापित होकर उनका पूजन होता है, तब इस बात को असत्य मानने से भी लाभ क्या? जिन महानुभावों को इस पर श्रद्धा न हो, जो इसे वाहियात बतलाकर अपने द्वारा लोगों का "अंधविश्वास" छुड़ाना चाहते हों, वे गाँव-गाँव, घर-घर सर्पदंश की दवा पहुँचाकर तब शताब्दियों के अनुभव को मिथ्या सिद्ध करने का यत्न करें।

कुछ भी हो, उसके चरित्र के लिये आगे के कुछ पृष्ठों का अवलोकन करने पर पाठकों को विदित हो जायगा कि एक सामान्य किसान किन उत्कृष्ट गुणों के कारण इस तरह लाखों आदमियों से पूजा जाता है। जो चमत्कार के उपासक हैं, वे उसके चमत्कार का, और जो गुणों के भक्त हैं, वे उसके गुणों का पूजन करें।

दूसरा अध्याय

माना का ताना

हाड़ौती, मेवाड़, मारवाड़ और अजमेर जहाँ-जहाँ तेजा का आदर है, वहाँ-वहाँ की भाषा में उसका गुण कीर्तन किया जाता है। उसके जन्म से लेकर शरीरांत तक की कथा का ही इस गायन में वर्णन है। कविता किसी साहित्य-शिरोमणि विद्वान् की नहीं, यमक, अनुप्रास, श्लेष और काव्य की ऐसी-ऐसी बारीकियों का उसमें लेश तक नहीं, और न उसमें रसिक जनों के मनों को आर्द्र कर देने के लिये शृंगार-रस है, और न उनके लिये "लपटाने दोऊ पट ताने परे हैं"—की छटा है, किंतु उस तुकबंदी का भाव बड़ा महत् है, और उसके अक्षर-अक्षर में जोश भरा हुआ है। चौमासे के दिनों में जिस समय काली घटाएँ छा-छाकर दिन को रात बना देती हैं, मेह बरस-बरसकर नालों को नदियाँ बना देने की वाहवाही लूटता है, और धरती हरी धोती ओढकर अपना मनमोहन सौंदर्य छिपा रखती है, उस समय यहाँ के किसान गले में ढोलक लटकाकर अलगोजों

के साथ नाचते जाते हैं, और लड़ा-लड़ाकर "तेजाजी" गाते जाते हैं। गाते समय वे सचमुच अपना आपा भूल जाते हैं, उनके सिरों पर से साफे गिर गए, तो कुछ परवाह नहीं और तंबाकू पीने की यदि उन्हें चाट भी लग रही है, तो कुछ चिंता नहीं। यह गायन, यह नृत्य तेजा-दशमी से पहले होता है।

मुंशी देवीप्रसादजी की खोज का जो वर्णन प्रथम अध्याय में है, वह केवल मारवाड़ के गायन के आधार पर है, और उसके अतिरिक्त इस लेखक को, जो लिखना है, वह हाड़ौती के गायन का सारांश है। मुंशीजी की तलाश में और हाड़ौती के गायन में थोड़ा-बहुत अंतर है। मुंशीजी उसे खड़नाल परगने नागौर राज्य जोधपुर का रहनेवाला बतलाते हैं, और हाड़ौतीवालों की राय में वह रूपनगर राज्य किशनगढ़ का निवासी था। ससुराल दोनों ही ने पनेर में बतलाई है, किंतु मुंशीजी के मत से पनेर किशनगढ़ के राज्य में है, और हाड़ौतीवाले अपने गायन में इस बात का पता नहीं देते कि यह गाँव किस राज्य में और कहाँ पर है। खैर! हाड़ौती-वालों के मत से इस बात का यदि पता न चले, तो मत चलने दीजिए, किंतु कुछ पृष्ठों के अवलोकन से विदित हो जायगा कि पनेर किशनगढ़ के राज्य में नहीं, किंतु ऐसी जगह पर है, जहाँ जाने के लिये तेजा को बनास नदी पार करनी पड़ी थी।

दूसरा अध्याय

माना का ताना

हाड़ौती, मेवाड़, मारवाड़ और अजमेर जहाँ-जहाँ तेजा का आदर है, वहाँ-वहाँ की भाषा में उसका गुण कीर्तन किया जाता है। उसके जन्म से लेकर शरीरांत तक की कथा का ही इस गायन में वर्णन है। कविता किसी साहित्य-शिरोमणि विद्वान् की नहीं, यमक, अनुप्रास, श्लेष और काव्य की ऐसी-ऐसी बारीकियों का उसमें लेश तक नहीं, और न उसमें रसिक जनों के मनों को आर्द्र कर देने के लिये शृंगार-रस है, और न उनके लिये "लपटाने दोऊ पट ताने परे हैं"—की छटा है, किंतु उस तुकबंदी का भाव बड़ा महत् है, और उसके अक्षर-अक्षर में जोश भरा हुआ है। चौमासे के दिनों में जिस समय काली घटाएँ छा-छाकर दिन को रात बना देती हैं, मेह बरस-बरसकर नालों को नदियाँ बना देने की वाहवाही लूटता है, और धरती हरी धोती ओढ़कर अपना मनमोहन सौंदर्य छिपा रखती है, उस समय यहाँ के किसान गले में ढोलक लटकाकर अलगोजों

के साथ नाचते जाते हैं, और लड़ा-लडाकर "तेजाजी" गाते जाते हैं। गाते समय वे सचमुच अपना आपा भूल जाते हैं, उनके सिरों पर मे साफे गिर गए, तो कुछ परवाह नहीं और तमाकू पीने की यदि उन्हें चाट भी लग रही है, तो कुछ चिंता नहीं। यह गायन, यह नृत्य तेजा-दशमी से पहले होता है।

मुंशी देवीप्रसादजी की खोज का जो वर्णन प्रथम अध्याय मे है, वह केवल मारवाड के गायन के आधार पर है, और उसके अतिरिक्त इस लेखक को, जो लिखना है, वह हाडौती के गायन का साराश है। मुंशीजी की तलाश में और हाड़ौती के गायन में थोड़ा-बहुत अतर है। मुंशीजी उसे खड़नाल परगने नागौर राज्य जोधपुर का रहनेवाला बतलाते हैं, और हाड़ौतीवालों की राय में वह रूपनगर राज्य किशनगढ का निवासी था। ससुराल दोनों ही ने पनेर में बतलाई है, किंतु मुंशीजी के मत से पनेर किशनगढ के राज्य में है, और हाड़ौतीवाले अपने गायन में इस बात का पता नहीं देते कि यह गाँव किस राज्य में और कहाँ पर है। खैर ! हाड़ौती-वालों के मत से इस बात का यदि पता न चले, तो मत चलने दीजिए, किंतु कुछ पृष्ठों के अवलोकन से विदित हो जायगा कि पनेर किशनगढ के राज्य में नहीं, किंतु ऐसी जगह पर है, जहाँ जाने के लिये तेजा को बनास नदी पार करनी पड़ी थी।

अस्तु, इतना पता अवश्य लग गया है कि तेजा के बाप का नाम वख्शाराम था, और तेजा को बदना जाट की बेटी ब्याही थी। जिस समय वह केवल छ: महीने का था, तभी उसका विवाह कर दिया गया था। इतनी जल्दी विवाह क्यों किया गया, सो मालूम नहीं, किंतु गाँववालों की कविता में कहा जाता है कि—

"पाली में परणायो रे कुँवर तेजा
ऊडो-ऊँडो भादूड़ो मो गाजै रे।"

बस यह कविता इस बात की गवाही दे रही है। गाँव-वाले अपने गीत में तेजा के केवल इस जन्म का ही हाल सुनाते हों सो नहीं, उन्हें किसी तरह मालूम हो गया होगा कि यह पूर्व जन्म में कौन था, और किस तप के प्रभाव से इस जन्म में अथवा मृत्यु के बाद इतना पूजनीय समझा जाने लगा। वे कहते हैं कि पूर्व जन्म में भी तेजा गायों का ग्वाल था। गाँव की गाएँ चराना ही शायद उसका पेशा था। अपनी गाएँ चराने के लिये वह नित्य जंगल में जाया करता था। एक दिन अकस्मात् उसे किसी महात्मा के दर्शन हो गए। तेजा ने उनकी बहुत सेवा की। फल यह हुआ कि एक दिन महात्मा ने प्रसन्न होकर उससे कहा—"बेटा, माँग ! जो माँगेगा सो ही पावेगा।" उसने हाथ जोड़कर उनके पैरों

पर पड़कर प्रार्थना की—"महाराज, जो आप मुझसे सचमुच प्रसन्न हुए हैं, तो मुझे ऐसा बरदान दीजिए, जिससे मेरा नाम होवे, और लोग मुझे पुजने लगें।" इस पर महात्मा बोले—"बेटा, तू जगली गँवार है। न तो तू भक्ति जानता है, और न ज्ञान, फिर किस बल से मैं बताऊँ कि तू महात्मा बन जायगा। अच्छा, भगवती यमुना के तट पर जाकर तपस्या कर, तेरा कल्याण होगा।" वह बोला—"महाराज, जब आपका बर-दान है, तब कल्याण अवश्य होगा। परन्तु मैं गाएँ चराने के सिवा और जगल के बबूल-गेजड़ों के सिवा यह भी तो नहीं जानता हूँ कि तपस्या किस चिड़िया का नाम है।" इस पर साधु ने योग की साधना का कुछ प्रकार बतलाकर उसे यमुना तट के किसी वृक्षविशेष पर उलटे लटकने का उपदेश दिया। हटयोग का साधन करते हुए वर्षों तक वह कदब के वृक्ष तले उलटा लटका रहा। बस, यों लटके-लटके ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गए। उसकी इस तरह मृत्यु हो जाने के बाद यमुना जल में उसके शरीर से रक्त की बूँदें गिरकर पुष्प बनकर बहने लगीं। उस पुष्प को लछमा (लक्ष्मी) जाटनी उठा लाई, और उसी के प्रभाव से उसके तेजा का जन्म हुआ। इसके तारा और फलचाए दो नाम और भी थे, किंतु वह प्रसिद्ध हुआ तेजा के नाम से।'

अस्तु, इतना पता अवश्य लग गया है कि तेजा के बाप का नाम बख्शाराम था, और तेजा को बदना जाट की बेटी ब्याही थी। जिस समय वह केवल छ महीने का था, तभी उसका विवाह कर दिया गया था। इतनी जल्दी विवाह क्यों किया गया, सो मालूम नहीं, किंतु गाँववालों की कविता मे कहा जाता है कि—

"थाली में परणायो रे कुँवर तेजा
ऊडो-ऊडो भादूडो सो गाजै रे।"

बस यह कविता इस बात की गवाही दे रही है। गाँव-वाले अपने गीत में तेजा के केवल इस जन्म का ही हाल सुनाते हों सो नहीं, उन्हें किसी तरह मालूम हो गया होगा कि यह पूर्व जन्म में कौन था, और किस तप के प्रभाव से इस जन्म में अथवा मृत्यु के बाद इतना पूजनीय समझा जाने लगा। वे कहते हैं कि पूर्व जन्म में भी तेजा गायों का ग्वाल था। गाँव की गाएँ चराना ही शायद उसका पेशा था। अपनी गाएँ चराने के लिये वह नित्य जगल में जाया करता था। एक दिन अकस्मात् उसे किसी महात्मा के दर्शन हो गए। तेजा ने उनकी बहुत सेवा की। फल यह हुआ कि एक दिन महात्मा ने प्रसन्न होकर उससे कहा—"बेटा, माँग! जो माँगेगा सो ही पावेगा।" उसने हाथ जोड़कर उनके पैरों

"दूसरे घाट से (आँखें खोलकर) भर ले। हम इस समय ठाकुर-सेवा कर रहे हैं।"

"और दूसरे घाट पर मेरा पैर फिसल जाय तब ? मेरी गागर टूट जाय, मेरी चूड़ियाँ फूट जायँ, और न-मालूम मेरे कहाँ-कहाँ चोट लग जाय। तू कब का ऐसा पंडित बन गया है, जो घाट पर किसी को पानी तक नहीं भरने देता। तेरी लुगाई अपने बाप के यहाँ पड़ी-पड़ी तेरी जान को रो रही है, यों ही अपनी जवानी खो रही है, और तू यहाँ पंडित बना बैठा है।"

"हैं मेरी औरत ! क्या मेरी विवाहिता ? जब मेरी शादी ही नहीं हुई, तब औरत आई कहाँ से ? तू झूठ बोलती है। अच्छा, जो सच्ची है, तो खा क़सम ! खा अपने चूड़े की सौगंद या अपने छोटे भैया की ?"

"मुझे गरज ही क्या पड़ी है, जो मैं झूठ बोलूँ। क्या मुझे झूठ बोलकर तुझसे जागीर लेनी है ? जिस गाँव में तेरी ससुराल है, उसी में मेरी पीहर (मैका) है, इसलिये मैं जानती हूँ, और इसीलिये मैं सौगंद खाती हूँ।"

यों माना गूजरी के सौगंद खाने पर उसने जाना और साथ ही माना कि "मेरी शादी हो चुकी है।" बस पति और पत्नी के बीच में जो एक अलौकिक प्रेम होता है, वह पत्नी का

नाम सुनते ही उसके हृदय में लहरें मारने लगा। आजकल पचीस वर्ष के लड़के चार-पाँच लड़कों के बाप बन जाया करते हैं, किंतु तब तक तेजा को स्त्री का शायद संसर्ग तक नहीं हुआ था। काम-शास्त्र के विद्वानों की तरह नहीं, ग्रामीणों के ग्राम्य धर्म का भी उसे थोड़ा-बहुत ज्ञान होता, तो अवश्य वह किसी-न-किसी तरह अपनी गृहिणी का पता पा सकता था। किंतु आज ही अभी उसे ख़बर हुई, और तुरत ही वह पूजा-पाठ समेटकर अपनी माता के पास पहुँचा। केवल पहुँचा ही क्यों, उसने उदास होकर अपनी जन्मदात्री माता से पूछा—

"मा! क्या मैं अभी तक कुँआरा ही हूँ? मेरे संगी साथी इस सावनी तीज पर अपनी-अपनी बहुओं को लाने के लिये अपनी अपनी ससुराल में जाने की तैयारी कर रहे हैं।"

"हैं! किस निपूते ने तुझे बहका दिया? किस मुँई ने ऐसा बोल मार दिया! हाय! तीर की मार अच्छी और "बोल" की मार खोटी। जिसने तुझे बहकाया है, उस पर—रामजी करें—बिजली गिरे।"

"नहीं मा! नहीं! जिन्होंने मुझसे कहा है, उन्हें ऐसी गाली न दे। भगवान् करे उनका मंगल हो। वे फलें-फूलें और सुख पावें। उन विचारों ने तेरा बिगाड़ा ही क्या है, जो तू उन्हें कोसती है। जिनके हाथ से हमारा कुछ नुक़सान हो जाय, उन्हें

आई। उसने पूरे डेढ़ सौ रुपए खर्च करके एक बढ़िया जो
खरीदी। इससे पाठक शायद यह समझ लें कि उस सम
भी बैलों की जोड़ी का यही भाव था, जो अब है, और आज
कल गायों और बैलों के मारे जाने का नाम लेकर चौप
मँहगे हो जाने की जो दुहाई दे रहे हैं, वे भूलते हैं, सो नहीं
जैसा माल वैसा मोल। घोड़ा पचीस को भी मिल सक
है, और पाँच हजार में भी सस्ता। साधारण कामों के लि
उस समय चालीस-पचास रुपए में जोड़ियाँ मिलती थीं
अस्तु, तेजा ने जोड़ी खरीदकर राज्य की कोतवाली अथ
सायर में महसूल चुकवाया। कोतवाली अथवा साय
लिखने से प्रयोजन वही है, जिसे गानेवाले चबूतरा कहते
और देशी रजवाड़ों में दोनों ही चबूतरा कहलाते हैं। सि
होता है कि आजकल की तरह हिंदू-राज्य में रहकर भ
बैल की बिक्री पर महसूल लेने का उस समय रवाज था

तेजा की बहन का नाम राजा था। वह किस गाँव
ब्याही गई थी, सो मालूम नहीं, किंतु तेजा व
दो रात बीच में रहकर पहुँचा। इससे अनुमान हो
है कि पचीस-तीस कोस से कम न होगा। तेजा के समधी
नाम जौंरा था। गाँव के किसी पनघट की बावली पर तेज
शरीर-कृत्य से निवृत्त होकर बहन से मिलने के इरादे

ठहर गया। गाँव की पनिहारिनें जब वहाँ पानी भरने के लिये आईं, तब उन्होंने बातचीत से उसे पहचाना, और तब राजा को जाकर ख़बर दी कि—"तुझे लिवा ले जाने के लिये तेरा भाई आया है।" इन स्त्रियों में राजा की ननद भी थी। उसका नाम मालूम नहीं। ननद का पैग़ाम सुनकर राजा ने यह बात मिथ्या समझी। वह बोली—

"मुझे पीहर से आए बारह वर्ष हो गए। अभी तक जब किसी ने मेरी सुध नहीं ली, तो अब कौन आने लगा! घर से निपूता ढोर खो जाने पर भी उसकी तलाश की जाती है। इसलिये नाहक मेरी दिल्लगी करके मुझे क्यों कुढ़ाती हो। उनके लेखे तो मैं मर गई।"

"नहीं-नहीं भाभी, कुढ़ो मत! उदास मत हो! मैं तुमसे दिल्लगी नहीं करती, सच कहती हूँ। तुम्हें विश्वास न हो, तो (अपनी चूड़ियाँ दिखाकर) सौगंद खाकर कहती हूँ कि तुम्हारा भाई आया है, और पनघट की बावली पर ठहरा हुआ है।"

इससे पाठक समझ सकते हैं कि जब हिंदू-रमणियाँ पति के लिये स्वप्न में भी कभी अशुभ चिंतन न करने का दावा करती हैं, जब चूड़ी की सौगंद उनके लिये सिर कट जाने से भी बढ़कर है, और जब उन्हें मर जाना मंजूर, परंतु चूड़ी की

क़सम खाना मंजूर नहीं, तब राजा की ननद ने एक हलकी-सी बात के लिये इतनी भारी कसम क्यों खाई ? उनकी ऐसी समझ में भूल नहीं, किंतु इस बात से यदि वे परिणाम निकाल ले कि हिंदू-समाज उस समय इतना गिर गया था कि पति की शपथ खाने में उसने किंचित् भी आनाकानी न की, तो उनका यह भ्रम है। क़सम खानेवाली जाटनी थी, जिनमें धरेजे का रवाज सदियों से चला आता है। हाँ, इससे यह नतीजा अवश्य निकल सकता है कि जिन जातियों में एक पति के मर जाने पर, अथवा उससे खटपट हो जाने पर दूसरा पति कर लेने की चाल है, उनके यहाँ पति की क़दर इतनी ही है।

ननद के सौगंद खाने पर जब राजा को भरोसा हुआ कि सचमुच उसका भाई आया है, तब वह फूले अंग न समा सकी। लोग कहते हैं कि पनघट की बावली से तेजा चल-कर जब बहन के यहाँ गया, तब नगर के लोग-लुगाइयाँ उसे देखने को इकट्ठी हो गई थीं। सब आपस में कहते थे कि—"जिसे देखने की मुद्दत से अभिलाषा थी, उसे आज आँखों से देख लिया।" बोध होता है कि या तो गाँव के जमीदार का नातेदार समझकर लोग तेजा को देखने आए हों, अथवा तेजा की वीरता का डंका इससे पहले बज चुका हो।

किंतु अब से पहले उसने कब, कहाँ वीरता की, सो पता नहीं। प्राचीन समय में द्विजों के यहाँ द्विज जब अतिथि होता, था तब मधुपर्कादि से उसका सत्कार करने की जैसी चाल थी, वैसे ही अपने किसी आत्मीय स्वजन प्यारे पाहुने के आने पर उसके लिये आरती उतारने का काम सुहागिनी माता, बहन इत्यादि किया करती थीं। बस, इसी तरह राजा ने तेजा का भी स्वागत किया। भारतवर्ष के भाषा-काव्य में जैसे अत्युक्ति का बहुत आदर है, वैसे ही इन गँवारों के गीतों में भी कमी नहीं है। कहा जाता है कि मोतियों से थाल भर-कर राजा ने भाई की आरती उतारी। मोती सच्चे थे अथवा झूठे, सो राम जाने। शायद मोती नहीं ज्वार हो। ज्वार के दाने मोती से होते हैं। लोग सेर ज्वार के लिये सिर कटा दिया करते हैं। "ज्वार बिना कोई द्वार न आवे जग में नाता ज्वारी का।" बस ऐसे भाई को बधा (?) लिया और तब दोनों ओर के कुशल-प्रश्नों का समय आया। तेजा ने अपनी माता का सँदेशा बहन और उसकी सास को सुनाया। उसने अपने गाँव की खबर सुनाते हुए कहा कि— "छोटा भाई अब इतना बड़ा हो गया है कि बछड़े चराने लगा है।" गाँववालों को अब तक भी अपनी उमर के साल याद नहीं रहते हैं। वे ऐसे ही इशारे से उमर बतलाया

करते हैं। इसका मतलब यही है कि लड़के की उमर दश-बारह वर्ष की है! खैर, बहुत वर्षों में भाई के आने पर बहन उसे उलाहना देने से भी न चूकी। उसने कह दिया—

"ओ हो! हो! इतने वर्षों में आया! मैं तेरी सूरत भी अच्छी तरह न पहचान सकी। मैं तो भैया, पीहर का रास्ता तक भूल गई।"

इसके अनंतर बहनोई से मिलने की बारी आई। दोनों ओर से "जुहार साहब! जुहार!" हुई। साले का आतिथ्य-सत्कार हुआ। नई हँड़िया में चावल तैयार किए गए। वहाँ पर भी तेजा ने भगवान् के भजन-पूजन में संकोच नहीं किया। तेजा का शृंगार इस तरह का था। पैरों में चमकीला जूता, हाथ में भाला, धोबी से धुलाई हुई मिरज़ई और कंधे पर रंगीन धोती। माथे पर क्या था, सो याद नहीं। भोजन करते समय तेजा की समधिन से यों बातें हुईं—

"समधिन, राजा को भेज दे। दस दिन वहाँ भी रह आएगी। मेरी मा का इसके लिये बहुत जी लगा हुआ है।"

"नहीं, इस समय मैं नहीं भेज सकती। बहू को भेज देने में मेरी खेती चौपट हो जायगी, और-तो-और परंतु दही कौन बिलोवेगा?"

इसके उत्तर में जब तेजा ने समधिन को एक भूरी भैंस

देने का वादा किया, तब वह राजा को भेज देने पर राजी हुई। यों सब लोगों से मिल-भेंटकर राजा की सास के पैरों पड़ने के अनंतर वह बहन को लेकर वहाँ से चल दिया। वास्तव में मार्ग की रक्षा का उस समय आज का-सा प्रबंध नहीं था। शायद तब इतनी आबादी भी नहीं थी। बहन की ससुराल और भाई के घर के बीच का रास्ता बिलकुल जंगल-ही-जंगल में होकर था। पीलेखाल के पास उनको मीनों ने घेर लिया। तेजा सिर से पहले नाक कटानेवाला, मरे मारे बिना एक ही घुड़की में कपड़े-लत्ते दे देनेवाला नहीं था। मीने भी बिना घायल किए अथवा बिना घायल हुए किसी को लूट लेना कायरता समझते थे। यदि कोई मुसाफिर चोरों के डर से चुपचाप कपड़े उतार देने को तैयार हो जाय, तो वे कहा करते थे कि—"यों देना हो, तो किसी ब्राह्मण को देना। हम खून निकाले बिना ऐसा दान नहीं लेंगे।" बस, परिणाम यह हुआ कि दोनों ओर से लड़ाई ठन गई। तेजा बोला—

"लड़ो बेशक! मैं भी रणभूमि को पीठ दिखानेवाला कुपूत कायर नहीं हूँ। मारूँगा, और तुम सबको मारकर मरूँगा, परंतु लड़ने-झगड़ने से पहले (धरती में अपना बरछा रोपकर) इसे उखाड़ लो, तब मुझसे संग्राम करने की हिम्मत करना।"

लोग कहते हैं, तेजा ने अपना भाला पत्थर में गाड़ दिया था। खैर, गाड़ा किसी जगह पर हो, परतु जब मीनों से बरछा उखड़ न सका, तब वे यह कहकर कि—

"अच्छा, आज हम तुझे जिंदा छोड़ देते हैं, परंतु जब तू ससुराल जावेगा, तब रास्ते के पहाड़ों में तुझसे जरूर बदला लेंगे।" चलने लगे।

"खैर, मैं तब भी तुम्हें पानी का लोटा पिलाने को तैयार हूँ। बेशक, मेरी ससुराल ऐसी ही विकट जगह में है, जहाँ लूट-खसोट, मार-काट और डकैती का बाज़ार हमेशा गर्म रहता है।"

तेजा से ऐसा जवाब पाकर मन-ही-मन वैर लेने की प्रतिज्ञा करते हुए वे लोग वहाँ से चले गए, और यह भी अपनी बहन को लिए हुए घर आ पहुँचा। घर पहुँचकर तेजा ने फिर वही ससुराल जाने की बात छेड़ी। माता ने बहुत समझाया, परतु उसने माना नहीं। बड़े भाई और भौजाई के नाम का पता नहीं, परतु भाभी ने उसे समझाया। उसने यहाँ तक कह डाला कि—

"जहाँ तेरी ससुराल है, वहाँ "दौड़ों" का दौर-दौरा है। मैं तुझे एक की जगह दो—एक मेरी सगी बहन और दूसरी चचेरी बहन विवाह दूँगी। तू वहाँ मरने के लिये मत जा।

वहाँ जायगा, तो अवश्य मारा जायगा। मैंने स्वप्न में देखा है कि तुझे नाग डस गया, और तेरा देवल बन गया। इसलिये प्यारे देवर, मैं तुझे हरगिज न जाने दूँगी।"

जब उसकी ससुराल ऐसे भयकर प्रदेश में थी, तब उसके चचा और भाई ने उसे रोका क्यों नहीं, अथवा उसकी मदद के लिये दस-पाँच हथियारबंद साथ क्यों न हुए, सो कोई नहीं कहता, परन्तु यह निश्चय है कि यह अकेला ही जाने को तैयार हुआ। तेजा की घोड़ी का नाम लीला अथवा लीलाधरी था, और उसका रग समद था। घोड़ी बड़ी मनचली थी। जाने की तैयारी देखते ही वह रणोन्मत्त की तरह नाचने और उमग दिखलाने लगी। तेजा ने तीर, कमान, भाला, सिरोही, तलवार, तोड़ेदार बदूक़ और कमर में कटार—इतन हथियार साथ लिए। उसके सिर पर सुरग पगड़ी, उस पर कलगी टँकी हुई थी। सब साज-सामान से लैस होकर वह घोड़ी के पास गया, और उसे चलने के लिये उतावली देखकर ज्यों ही वह घोड़ी पर चढ़ने लगा, त्यों ही उसकी मा, भौजाई और बहन ने उसे पकड़ लिया। उन्होंने फिर भी उसे समझाया, परन्तु उसने किसी की एक भी न सुनी। बहन के पूछने पर उसने इक़रार किया कि—"पीपल के जितने पत्ते हैं, उतने ही दिनों में वापस आऊँगा।" बस इससे सबने समझ लिया कि "तेजा वापस

आने के लिये नहीं जाता, मरने को जाता है।" यह समझ-कर सब-की-सब रो-पीटकर रह गईं और सचमुच ही तेजा मरने के लिये, मरकर अपना नाम अमर कर जाने के लिये घोड़ी पर सवार होकर वहाँ से चल दिया।

चौथा अध्याय

प्रतिज्ञा की परिसीमा

जब तेजा अपने घर से सचमुच मरने-मारने अथवा मर मिटने के लिये चला था, जब उसने माता और बहन तथा भौजाई के हज़ार समझाने पर भी अपनी गृहिणी से मिलने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी, और जब उसे मीनों की चुनौती के बदले के लिये, समर-भूमि में अपने हाथों की परीक्षा देकर अपना नाम अमर कर जाना था, तब मार्ग में यदि बुरे से भी बुरे शकुन हुए, तो क्या! यद्यपि देहाती लोग शकुनों के बहुत क़ायल हैं, वे इस काम को समझते भी अच्छा हैं, और अनुभव से अनेक बार सिद्ध हो चुका है कि शकुन झूठे नहीं होते हैं, परन्तु तेजा ने बुरे शकुनों की किंचित् भी परवा न की। निश्चय है कि तेजा गँवार देहाती होने पर भी कर्तव्य-दक्ष था। वह जानता था कि आदमी अपने कर्तव्य-पालन के लिये पैदा हुआ है। वह नितांत निरक्षर होने पर भी जानता था कि चाहे कोई प्रशंसा करे अथवा निंदा, चाहे धन आवे अथवा चला ही क्यों न जाय, चाहे आज ही शरीर छूट जाय अथवा सौ वर्ष बाद, परन्तु धीर पुरुष न्याय का मार्ग नहीं छोड़ते हैं। वह सचमुच ही—

"निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्,
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा।"

इस लोकोक्ति का ज्वलन्त उदाहरण था। बस, इसलिये उसने अपनी जन्मदातृ माता की आज्ञा को तुच्छ समझा। देहातियों के लिये जिन शकुनों पर ही उनकी दुनियादारी का आधार है, जो ज्योतिष के मेघ-गर्भों से, गवर्नमेंट की मेटिरिओलाजिकेल रिपोर्ट से वृष्टि, खेती और फसल के काम में हज़ार दर्जे, ठीक मिलते हैं, उन्हें पैरों से रौंदकर चला और यों उसने दिखला दिया कि जिसे कुछ कर दिखाना है, उसके लिये ये तिनके के समान रही हैं।

उसे मार्ग में काले और खाली कलश लिए कुँमारी मिली, उसके सामने काले बैलों की जोडी जुती हुई गाड़ी मिली, उसके जाते समय बाई और गीदड़ बोला, और इसी तरह खोटे-से-खोटे अपशकुन उसे होते गए। जब तेजा ऐसे-ऐसे भयकर अपशकुन देखने पर भी न डरा, न लौटा और उसने अपना सकल्प न बदला, तब यदि शकुन देखते ही मन में एक बार डगदगा भी हुआ, तो क्या, और न हुआ तो क्या!

अस्तु ! जिस समय वह यों घोड़ी दौड़ाता चला जा रहा था, उस समय एकाएक उसकी नजर जलते हुए जगल पर पड़ी। वहाँ का जगल जल-जलकर भयंकर ज्वालाएँ उगल रहा था, चारों ओर धुआँ-ही-धुआँ होकर आकाश धुआँधार हो रहा था। जो पशु और पक्षी भागकर, उड़कर अपना प्राण बचा सकते थे, वे अवश्य भागे, उन्होंने अपनी प्राण-रक्षा का भरसक प्रयत्न किया, किंतु जब यमराज का छोटा भाई भीषण दावानल प्रलयकाल की अग्नि की तरह अपने हजार-हजार हाथों से पकड़कर जीव-जतुओं को अपने विश्वनाशक मुख में डाल रहा था, तब जान बचाने का उपाय ही क्या ! यों भाग जाने पर भी, उड़ जाने पर भी जल-भुनकर भुरता हो गए। वहाँ की यह दशा देखकर उसका कोमल हृदय एक-दम पसीज गया। गृहिणी से प्रथम समागम की उसकी लालसा और प्रतिज्ञा हवा हो गई। उसने गाएँ चरानेवाले ग्वालों से इसका कारण पूछा। उसने पूछा कि—"ऐसा घोर कर्म करनेवाला कौन है ?" शायद उसे यदि आग लगा देनेवाले का नाम-धाम मालूम हो जाता, तो वह अवश्य उसे सजा चखाए विना नहीं मानता। परतु जब बाँसों के सघर्षण से आग लगी थी, तब वह दड भी देता, तो किसे देता ? जो जगल जल रहा था, वह घास से हरा-भरा था। गोचारण के लिये परती

छोड़ी हुई भूमि थी। यह सच्चा गोरक्षक, गो-सेवा के सिवा अभी तक उमर-भर में इसने कुछ काम ही नहीं किया, और जब गोरक्षा के लिये ही मरने को जा रहा है, तब गोग्रास—गाय का चारा—जलते देखकर उसका हृदय उछल पड़ा।

तेजा ने घोड़ी से उतरकर उसे एक अधजले ठूँठ से बाँध दिया। वह धोती ऊपर चढ़ाकर, हाथ की बाँहें ऊँची समेट-कर आग बुझाने के लिये तैयार भी हुआ, परंतु वहाँ बंबई-कलकत्ते की तरह आग बुझाने की कल नहीं, पास कोई कुआँ नहीं, वावली नहीं, तालाब नहीं। पुराण-प्रसिद्ध कथा है कि एक बार किसी पक्षी के अंडे समुद्र बहा ले गया। पक्षी को उस पर क्रोध आया। "कमजोर और गुस्सा ज्यादह" इसके अनुसार वह पखेरू समुद्र-जैसे महा बलवान् शत्रु की अनंत जलराशि को उलीच-उलीचकर फेंक देने को तैयार हुआ। जल भर-भरकर फेंकने के लिये उसके पास कोई पात्र नहीं, पखाल नहीं, और मशक नहीं—तब उसने अपनी जरा-सी चोंच से भर-भरकर पानी फेंकना प्रारंभ किया। बस, तेजा का उद्योग उसी पक्षी के समान था। वह पक्षी चोंच से समुद्र उलीचकर बदला लेना चाहता था, और तेजा ने विना जल, विना मदद आग बुझाने का साहस किया। आग किस तरह बुझाई गई, सो कोई नहीं बतलाता, किंतु "जो आकाश पर तीर मारता

कभी सीखा नहीं। हजार जमाना बिगड़ जाने पर भी ऐसी नीचता हिंदू से कभी स्वप्न में भी नहीं हो सकती। हाँ, तेजा के लिये इस समय एक रास्ता और भी था। वह यदि चाहता, तो उसकी खुशामद कर सकता था, उसके आगे रोकर—गिड़गिड़ाकर प्राणों की भिक्षा माँग सकता था। किंतु "हा-हा खाए न ऊबरे बैरी बस पड़ियाँ" यह लोकोक्ति उसके दिमाग में चक्कर काट रही थी। जो हथेली पर जान लेकर केवल मरने ही के इरादे से घर से निकल पड़ा है, यदि वह शत्रु की, और सो भी एक ऐसे दुश्मन की जिसको वह अभी मरते-मरते बचा चुका है, खुशामद करे, तो सचमुच उसकी बहादुरी में बट्टा लग जाय—उसकी जननी लजा जाय। बस, इसीलिये तेजा ने उस सर्प को वचन दिया। वह बोला—

"अच्छा, तुझे उपकार के बदले में मेरा अपकार करके कृतघ्न बनना है, तो भले ही बन। मैं तैयार हूँ। मैं मरने को तैयार हूँ। मुझे किंचित् भी तुझसे भय नहीं है। किंतु आज से सर्प जाति पर कोई उपकार नहीं करेगा।"

"कुछ भी हो, परंतु जब मेरी नागिन इसी आग में जलकर मर चुकी है, तब तूने मुझसे मेरा विछोह क्यों किया? मैं तुझे

उससे नाराज हुआ। नाराज होकर उसने दिखला दिया कि दुर्जनों का उपकार करके मौत मोल लेना है। उसने साबित कर दिया कि जो बुरे हैं, वे अपनी बुराई से कभी नहीं चूकते। इसी लिये बड़े लोगों ने ठीक कहा है कि—"पय पानं भुजगानां केवलं विष वर्द्धनम्"।

खैर! वह साँप बोला—"ओहो बड़ा गजब हो गया। तैने मुझे बचाया क्यों? मैं यदि जल जाता, तो कष्टों से छूटता। मैं हिंदू-सम्राट् पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन मुहम्मद-गोरी के दारुण संग्राम में मारा गया चाँपावत सरदार हूँ। मेरा नाम बल्लूसिंह (बलदेवसिंह अथवा बलवंतसिंह का संक्षेप) है। अपनी घोड़ी का मूल्य चुकाए बिना मर जाने से और मरती बार मन में इस तरह की ग्लानि रह जाने से मुझे सर्प-योनि में आना पड़ा है। मैं मर जाता, तो दुःख से छूटता। अब मैं तुझे डसूँगा। मारे बिना हरगिज न छोड़ूँगा।"

एक विषधर भुजग का, नरजाति के चिरशत्रु का, ऐसा इरादा देखकर, उससे ऐसा बर्ताव पाकर यदि तेजा चाहता, तो उसी समय उसका सफाया कर सकता था, किंतु जिसको बनाया, उसे बिगाड़ना, जिसे बचाया, उसको मारना और जिसका उपकार किया है, उसका घात करना हिंदू-जाति ने

कभी सीखा नहीं। हज़ार ज़माना बिगड़ जाने पर भी ऐसी नीचता हिंदू से कभी स्वप्न में भी नहीं हो सकती। हाँ, तेजा के लिये इस समय एक रास्ता और भी था। यदि वह चाहता, तो उसकी खुशामद कर सकता था, आँखें भर-भर रोकर—गिड़गिड़ाकर प्राणों की भिक्षा माँग सकता था। किंतु "हा-हा खाए न ऊबरै बैरी पग पड़िऐ" वाली लोकोक्ति उसके दिमाग में चक्कर काट रही थी। मैं हथेली पर जान लेकर केवल मरने ही के इरादे से घर से निकला पड़ा हूँ, यदि वह शत्रु की, और सो भी एक ऐसे दुश्मन की, जिसको वह अभी मरते-मरते बचा चुका है, खुशामद करे, तो सचमुच उसकी बहादुरी में बट्टा लग जाय—राजपूत जननी लजा जाय। बस, इसीलिये तेजा ने उस ओर से मुँह मोड़ दिया। वह बोला—

"अच्छा, तुझे उपकार के बदले में मेरा अपकार करके कृतघ्न बनना है, तो भले ही बन। मैं तैयार हूँ। मैं मरने को तैयार हूँ। मुझे किंचित् भी तुझसे भय नहीं है। किंतु आज से सर्प जाति पर कोई उपकार नहीं करेगा।"

"कुछ भी हो, परंतु जब मेरी नागिन इसी आग में जलकर मर चुकी है, तब तैने इससे मेरा विछोह क्यों किया? मैं तुझे ज़रूर डसूँगा।"

"हाँ-हाँ, डस लनो ! डस लेना ! मैं कब कहता हूँ कि मुझे प्राण-दान दे, परंतु एक ही बात मैं तुझसे कहता हूँ। मेरी शादी हुए बारह और बारह चौबीस वर्ष हो गए हैं। तब से मेरी स्त्री अपने मैके में पड़ी-पड़ी कौवे उड़ा रही है। एक बार जीते जी उससे मिल आने दे। तब मैं जरूर तेरे पास आ जाऊँगा। उस समय जो कुछ तेरे जी में आवे, सो करना।"

इस पर सूर्य-चद्रमा की गवाही से, धरती माता की शहादत से सर्प ने तेजा की बात स्वीकार की। वास्तव में हिंदू-जाति की सत्यनिष्ठा का यह नमूना है। तेजा की सच्चाई की सीमा है कि शत्रु भी उसके वचनें का विश्वास करे। एक कृतघ्न सर्प तक को उसकी प्रतिज्ञा-पालन का भरोसा हो। इससे सिद्ध होता है कि उस समय तक हिंदू-जाति के हृदय से विश्वास का विनाश नहीं हुआ था।

यों तेजा काल के गाल में से बचकर वहाँ से चल अवश्य दिया और चला भी एक और प्रतिज्ञा के भार से अपने हृदय को लादकर अपनी प्राणप्यारी के प्रिय दर्शन के लिये। किंतु वहाँ से दो मंजिल निकलकर जब तीसरी मंजिल पर पहुँचा, तो बनास नदी ने उसका रास्ता रोक लिया। घोड़ी समेत तेजा को नदी पार कर देने के लिये मल्लाह अवश्य तैयार थे, किंतु वह खेरवद खोलकर ऊपर बाँध लेने के बाद घोड़ी-समेत

चौमासे की चढ़ी हुई बनास के पार हो गया। पार जाकर उसने दूसरे किनारे पर श्रीबदरीनाथ महादेव के दर्शन किए। गानेवाले कहते हैं कि यह वही महादेव हैं, जो आजकल गोकर्णेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हैं। गोकर्णेश्वर महादेव का मंदिर बनास के किनारे जयपुर राज्य के राजमहल-नामक क़स्बे में है। यह स्थान छावनी देवली से पाँच कोस पर अब तक विद्यमान है। यहाँ तेजा ने महादेव के दर्शन कर ब्राह्मण-भोजन कराया, आप भोजन किया, और घोड़ी को ख़ूब चूरमा खिलाया। तब दो दिन बीच में ठहरकर अपनी ससुराल के गाँव पनेर पहुँचा।

अब पाठकों ने अवश्य समझ लिया होगा कि मुंशी देवीप्रसादजी की बतलाई हुई पनेर और इस पनेर में कोसों का अंतर होना चाहिए। मुंशी देवीप्रसादजी की तलाश के अनुसार तेजा की जन्मभूमि चाहे मारवाड़ के खड़नाल गाँव में हो, अथवा गानेवालों के विचार के अनुसार रूपनगर राज्य किशनगढ़ में हो, किंतु उसके गाँव और ससुराल का फ़ासला कम-से-कम पाँच सात मंजिल होगा, और इन दोनों के बीच नदी बनास भी होनी चाहिए। यद्यपि, पनेर गाँव बूँदी अथवा जयपुर के इलाक़े में कहाँ पर है अथवा उस ज़माने में था, सो अभी तक मालूम नहीं, किंतु जो आदमी रूपनगर से चलकर राजमहल के निकट बनास नदी के पार उतरे और राजमहल

से उसकी ससुराल दो-तीन मंजिल पर हो, तो उसकी ससुराल अवश्य बूँदी के इलाके में दुगारी के आस-पास होनी चाहिए। दुगारी में अब भी तेजा दशमी पर बहुत बड़ा मेला होता है। दूर-दूर के यात्री अपनी-अपनी डमियाँ कटवाने के लिये वहाँ जाते हैं। जब अटकल से ही काम लेना है, तब यह भी कहा जा सकता है कि इसकी ससुराल केकड़ी में थी, क्योंकि वहाँ भी भारी मेला होता है। परंतु इस अटकल से सचाई नहीं मालूम होती, क्योंकि रूपनगर से केकड़ी जानेवाले को शायद प्रथम तो बनास उतरने की आवश्यकता ही नहीं और सो भी राज-महल के पास!

पाँचवाँ अध्याय

ससुराल में तिरस्कार

गत अध्याय के अंत में तेजा पनेर पहुँच तो गया, परन्तु जिसने पचीस वर्ष की उमर में कभी ससुराल नहीं देखी, सास-ससुर नहीं देखे, अपनी सात फेरे की औरत नहीं देखी, अथवा यों कहो कि जिसको किसी ने न देखा, वह यों ही—बिना किसी तरह के इशारे के—ससुराल में जाकर कहे कि "मैं तुम्हारा दामाद हूँ" और यदि वहाँ पर पहचाना न जाय—और ऐसा संभव भी है, क्योंकि जब उसका ब्याह हुआ था, तब उसकी उमर छ महीने की थी, तो जरूर ही वहाँ से जूते मारकर निकाल दिया जाय। क्योंकि हिंदुओं में दूसरे किसी का दामाद बन जाना गाली है, और यह उस ज़माने की बातें हैं, जब राजपूत-जाति किसी को अपना दामाद बनाने में अपनी हेठी—अपने लिये लज्जा समझकर कोमल कन्याओं का जन्म लेते ही कलेजा मसोस डालती थी। "न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी" की लोकोक्ति के अनुसार जनमते ही बालिका के रक्त में अपने हाथ रँगने की नीचता दिखाने में नहीं हिच-

कती थी। सब नहीं, अनेक परंतु अनेकों की नीचता से कलंक सब पर था, और उस काले टीके को मिटाने का यश ब्रिटिश गवर्नमेंट को है।

अस्तु, तेजा ने गाँव के बाहर जाकर किसी बगीचे में विश्राम लिया। यह बाग उसके ससुरालवालों का था, किंतु तेजा नहीं जानता था कि किसका है। जब वह जाकर वहाँ पहुँचा, तब बगीचे का ताला बंद था। इसके कहने से मालिन ने ताला नहीं खोला। गीतों में कहा जाता है कि उसके प्रताप से ताला अपने आप खुल पड़ा, और शायद ससुराल में आकर अपनी मस्ती दिखाने के लिये ही उसने बगीचे में घोड़ी यों ही छोड़ दी। घोड़ी ने बगीचे के पेड़ तहस-नहस कर डाले, तब मालिन को गुस्सा आया और उसने खूब कोड़े मार-मारकर घोड़ी की खाल उड़ा डाली। घोड़ी की ऐसी दुर्दशा देखकर तेजा का भी क्रोध भड़क उठा। उसने मालिन को ठोंका। मालिन रोती-पीटती अपनी मालकिन के पास गई। इस तरह तेजा के वहाँ आने का पैग़ाम उसकी ससुराल में पहुँचा। यह बगीचा उसकी स्त्री की निगरानी में था। उसका नाम बोदल था। उमर उसकी यही बारह और बारह चौबीस वर्ष की होगी। इस तरह बाग को नष्ट-भ्रष्ट कर डालना, और तिस पर मालिन को मारना—ये दो अपराध

तेजा के थे। मालिकिन को सुनकर पहले बहुत ही क्रोध आया। एक चौबीस वर्ष की अबला में बल ही क्या, जो प्रचंड तेजस्वी तेजा का मान-मर्दन कर सके। यदि दोनों के भाग्य में दांपत्य सुख बदा होता, तो शायद किसी दिन मानिनी बनकर तेजा का मान भी मर्दन कर सकती थी, किंतु इस समय युवती बोदल ने लूट-मार के केंद्र पनेर के निवासी लुटेरों के सरदार बदना जाट के बल पर यहाँ तक कह डाला कि—"मैं और तो और, परंतु पानी तक में आग लगा सकती हूँ। आकाश के तारे उतार सकती हूँ। तू घबराय नहीं। जिसने मेरा बाग बिगाड़कर तुझे मारा है, उसे अवश्य दंड दिया जायगा।" घर में बेटी लाड़ली थी, और ससुरालवालों के न सँभालने से बेटी का लाड़ और भी बढ़ गया था। बस, इसने अपनी भाभी को हुक्म दिया कि—"पानी भर लाने के मिस से जाकर देखो तो वह कौन आदमी है?" ननद के कहने से भौजाई गगरी सिर पर रखकर बगीचे की बावली में पानी भरने को गई। यह बावली बदना की बनवाई हुई थी।

जिस समय भौजाई ने वहाँ पहुँचकर सिर की गगरी सीढ़ियों पर धरी, तेजा जपस्थली में हाथ डाले हुए "राम-राम" जप रहा था। तेजा के लिये इस तरह भजन करने का यदि

यह पहला ही अवसर हो, तो पाठक कह सकते हैं कि उसने ससुरालवालों को दिखलाने के लिये ढोंग फैलाया था। किंतु नहीं—यह उसका नित्य का नियम था, और सचमुच ही वह बड़ा आस्तिक था। वह खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते, चलते-फिरते कोई काम भगवान् का नाम लिए बिना नहीं करता था। इस गायन में पद-पद पर इसका संकेत है। फिर वह जमाना भी ऐसा नहीं था, जिसमें भगवान् का भजन भी झूठा ढकोसला ख़याल किया जाय।

बादल की भौजाई और तेजा के साले की बहू ने घूँघट की ओट से उसे सिर से पैर तक अच्छी तरह निरखकर कुछ-कुछ पहचाना, कुछ अटकल लगाई, और तब कुछ मुस-किराकर होठों से अपनी मद-मद हँसी को दबाते हुए पर-देशी अनजान से बात करने में अथवा यदि कुछ पहचान भी लिया, तो अपने ननदोई से बातचीत करने में लजाते हुए पूछा और पूछने में ही थोड़ा-सा विनोद झलकाकर अपना परिचय दे डाला। वह बोली—

'ए परदेशी-परेरू! किस नगरी का निवासी है, और किसके यहाँ का प्यारा पाहुना है ?"

"मैं रूपनगर का रहनेवाला हूँ, और इसी नगरी में चदना का प्यारा पाहुना। चदना मेरा ससुर और मैं उसका

दामाद !" तेजा से ऐसा उत्तर पाकर उसकी कली-कली खिल उठी। वह वैसे ही मृदु हास्य से कहने लगी—"कुँवर साहब! हैं आप पधारे हैं! भले पधारे! आज किधर भूल पड़े। मेरी ननद तो आपकी राह देखती-देखती थक गई।" उसने इस तरह तेजा को अपना परिचय देकर उसका परिचय ले लिया, किंतु हिंदुओं में यों ही स्त्री-जाति को स्वतन्त्रता नहीं, फिर घर की बहू-बेटी और जवान क्योंकर एक जवान मेहमान से कह सके कि—"तुम घर चलो।" बस यों भी वह जाते-जाते ननदोई को उसी घूँघट की ओट से निरखती हुई, सिंहावलोकन की तरह फिर-फिरकर उसकी ओर निहारती हुई चल दी, और घर पहुँचकर तब ननद से बोली—

"लाओ हमारी मिठाई! बोलो, आज क्या इनाम दिलवाओगी? मैं अभी ऐसी खबर सुनाना चाहती हूँ, जिससे तुम्हारी कली-कली खिल उठे।"

"हैं-हैं! क्या खबर? कहो तो सही, कौन-सी ख़बर? ऐसी कौन-सी खबर है, जिसके लिये तुम मिठाई माँगती हो। मिठाई दो, तो तुम दो। भगवान् ने तुम्हें सुख दिया है। तुमने इस बार गनगौर पर ही मिठाई नहीं दी! मुझ अभागी से मिठाई क्या और इनाम क्या? जिसे ज़िंदगी-भर तुम्हारे टुकड़ों पर

गुजारा करना है, उससे मिठाई ? भाभी, यों ही काँटों में न घसीटो !"

"नहीं, सच कहती हूँ, हँसी नहीं करती। आज जरूर मिठाई लूँगी, (हँसकर) प्यारे पाहुने का—तुम्हारे ही प्यारे का पैगाम लेकर आई हूँ। जिसके लिये तुम बरसों से आस लगाए बैठी थीं, वह आ पहुँचा और तुम्हें ही लेने के लिये आए हैं। मौज " इतना कहते-कहते ननद ने भौजाई का मुँह पकड़ लिया। इसके बाद क्या बातचीत हुई, सो कहने का अधिकार इस लेखक को नहीं। कहने की आवश्यकता भी नहीं। मेरी कल्पना ने जहाँ तक इसे पहुँचा दिया, उतना ही बस है।

ख़ैर, पनिहारियों के कहने से तेजा को मालूम हुआ कि घदना जाट की हवेली के दरवाज़े पर पारस पीपल का पेड़ है, उसका बेटा कानों में मोती पहने हुए है, और वह खूब धनवान् है, परन्तु उसने वहाँ जाने पर शायद इसका बिलकुल उलटा पाया। जिस समय तेजा ने अपनी सास के पास जाकर जुहार किया, वो वह पीढ़े पर बैठी चरखा कात रही थी। जब ससुर से मिला, तब वह भैंस चरा रहा था। उसके घर की औरतें आँगन बुहार रही थीं, और लड़का चौसर खेल रहा था। दामाद की ख़ातिर करने के लिये पलँग बिछाया

गया, और कस्तूरी डाला हुआ तवाकू उसे पीने को दिया गया। तेजा ने ससुरालवालों का ऐसा आतिथ्य स्वीकार तो किया, परतु वहाँ जाते ही फिर भगवान् की सेवा करने के लिये जल की गगरी माँगी। इधर उसका इस प्रकार से नित्य का नियम आरभ हुआ, और उधर खाना बनने लगा। घर से घी देकर बदले में तेल, गेहूँ का आटा देकर उसकी जगह कुलत्थ और दामाद को परोसने के लिये बाकले तैयार किए गए। इस पर बेटी बहुत कुढी, बहुत रोई, और मुँहफट बनकर उसने माता से यहाँ तक कह दिया कि—

"घर में सब कुछ मौजूद होने पर भी मेहमान का इतना तिरस्कार क्यों करती है? क्या तुझे आना अच्छा नहीं लगा?"

"हाँ-हाँ! जमाई और जम, दोनों की एक ही राशि है।"

अस्तु, वह यों ही रो-झींककर रह गई, और तेजा के लिये परसा वही गया, जो तैयार किया गया था। तेजा ने उस थाल में से दो-तीन ग्रास अवश्य लिए, परतु ससुराल मे जाने पर ऐसा अपमान! जहाँ देवता के समान पूजा होने की आशा, वहाँ ऐसा निरादर! विवाह के बाद चौबीस वर्ष में पहली बार जाने पर ऐसी बेइज्जती! तेजा इस अपमान

को सहन न कर सका। वह तुरत ही उठ खड़ा हुआ। खड़े होकर उसने थाली को एक लात मारी। तब वहाँ से यह गया, वह गया, चल दिया। जाती वार उसने सास से जुहार की या न की, सो मालूम नहीं, किंतु उसने सास की गाली अवश्य खाई। उसे जाता देखकर वह बोली—

"अच्छा, जाता है, तो जा निपूते! तुझ पर गाज पड़े। जा! तुझे काला खा जावे! जा!"

तेजा गाली खाकर नहीं गया। गाली के बदले ऐसी ही उलटी गाली देकर वहाँ से वह चल दिया। तब उसने उसी बगीचे में अपना डेरा डाल दिया। वहाँ ठहरकर तेजा ने बस्ती-भर के ब्राह्मणों को भोजन कराया। केवल ब्राह्मण-भोजन ही क्यों, बस्ती के सब लोग-लुगाई, बालक-बूढ़ों को न्योता दे दिया, एक न दिया अपनी ससुरालवालों को। ब्राह्मण रसोई बनानेवालों के हाथ से चूरमा बनवाकर सब को जिमाया। जब सब लोग राजी-खुशी भोजन कर चुके, तब तेजा की बारी आई। भगवान के ध्यान पूजन से निवृत्त होकर यह भी भोजन करने बैठा सही, परंतु ससुराल की तरह वहाँ भी परसी थाली उसके सामने से खींच ली गई। अन्न अच्छा-बुरा चाहे जैसा हो, किंतु तेजा ने वहाँ उसके लात मारी थी। हिंदू अन्न को देवता मानते हैं,

तब भी उसने उसका अपमान किया था। यहाँ तेजा के भोजन—आरम्भ करके दो-तीन ग्रास लेते-लेते ही माना गूजरी ने इसके आगे हाय तोबा मचाई। शायद यह वही माना गूजरी थी, जो एक बार जगल में जलाशय के किनारे उससे मिलकर उसके विवाह होने की याद दिला चुकी थी। माना ने कहा—

"हाय-हाय! अब मैं क्या करूँगी? घर में इस समय कोई आदमी नहीं। निपूते इस गाँव के कोई मेरी पुकार सुनते नहीं, और लुटेरे जगल में से चरती हुई मेरी सब गाएँ लिए जा रहे हैं।"

"ले गए तो ढोली (ढोल बजानेवाले) को बुलाकर गाँव की "बार" चढ़ा। सबके साथ मैं भी चलने को तैयार हूँ।"

"बार क्या चढ़ाऊँ? गाँव के सारे मर गए। जब तू ही डरके मारे मरने के डर से आनाकानी करता है, तब हद हो गई। हाय अब मैं क्या करूँगी। हाय मेरी सब गाएँ गईं! गवाड़ा-खिड़क खाली हो गया। अरे! ये वे ही चाँदा के मीने हैं, जिनसे तैने चुनौती का बदला लेने की सौगद खाई थी। ऐसा नामर्द था, तो घर से आया ही क्यों था? मेरी तरह घाँघरा पहन लेता।"

"हूँ वे ही मीने ? अच्छा तब जरूर जाऊँगा। अवश्य मारूँगा और मरूँगा, परंतु तेरी गाएँ छुड़ाकर लाऊँगा। जो न छुड़ा लाऊँ, तो मैं तेजा नहीं। तेजा और तेजा की सात पीढ़ी को धिक्कार !" यों कहते हुए तेजा ने भूखे पेट थाली हटा दी। हाथ धोकर कुल्ली करने के अनंतर तेजा ने कपड़े पहने, हथियार सजाए और तब घोड़ी कसकर उस पर सवार हो गया। सवार क्या हुआ, चढ़कर अकेला ही गाँववालों की मदद लिए बिना चल दिया। घर से जब चलने लगा था, तब माता ने उसे रोका था, किंतु "बेटी देकर बेटा लेनेवाले" सास-ससुर ने इससे कुछ न कहा। मालूम होता है कि ससुरालवालों में इसकी दुश्मनी थी।

छठा अध्याय

डेढ़ सौ से अकेला

तेजा अथवा उसकी माता से बदना और उसकी जोरू की यदि शत्रुता न होती, तो माता इसे ससुराल जाने से क्यों रोकती, और बदना की औरत ही ऐसे प्यारे पाहुने का इतना अपमान क्यों करती ? तेजा की माता के लिये तो यह भी खयाल किया जा सकता है कि बेटे का अमंगल विचार-कर उसने भेजने में नाहीं की, क्योंकि इधर तेजा मुठमर्द और उधर का प्रदेश भयंकर, किंतु बदना की जोरू के वर्ताव का कोई कारण ध्यान में नहीं आता। संभव है कि आजकल हिंदू-समधियों की आपस में जैसे जरा-जरा-सी बात के लिये खिंचा-खिंची हो जाया करती है, और इस समय समधियों अथवा समधिनों के परस्पर अड़ाव से जैसे आजीवन स्त्री-पुरुष में जूती पैजार हुआ करती है, वैसे ही कुछ हो पड़ा हो !

खैर, माना गूजरी के उभारने से तेजा सज-धज के साथ डेढ़ सौ मीनों से लड़ मरने के लिये अकेला ही चढ़ दौड़ा। उसकी शरणागतवत्सलता ने, उसके प्रतिज्ञा-पालन ने अथवा उसकी भावी ने उसे पीठ तक फेरकर न देखने दिया कि कोई

उसकी मदद के लिये आता तो नहीं है। अस्तु, वह घोड़ी दौड़ाता वहाँ से चला, और जब तक उसे गायों को लिए हुए मीने जाते दिखाई न दिए, उसने कहीं विश्राम तक न लिया। अंत में उसे दूर से गोरज उड़ती दिखलाई दी। फिर गाएँ देख पड़ीं और साथ ही डेढ़ सौ हथियार बंद मीनों का झुंड। एक ओर डेढ़ सौ और दूसरी ओर अकेला वह। यदि तेजा कच्चे दिल का होता, यदि उसे प्राणों का लोभ होता और यदि वह माता से की हुई प्रतिज्ञा को तिनके की तरह तोड़ डालना चाहता, तो उसी समय वापस जा सकता था। परंतु नहीं! रणभूमि से विमुख होकर भाग जाना और मर जाना उसके लिये समान था। वह ऐसे नाक कटाकर जीने से सिर कटा-कर मर जाने को सीधे स्वर्ग चला जाना समझता था। बस, इसलिये उसने अपने प्यारे प्राणों को समर-यज्ञ में होम देने के दृढ़ संकल्प के साथ ही लुटेरों को ललकारा—

"ठहरो! ठहरो! कहाँ लिए जाते हो इन गायों को? जो मर्दमी है, तो लड़ो! अपने प्रण को पालन करो, और जो हिम्मत नहीं हो, तो गायों को छोड़कर भाग जाओ। देखना, तुम डेढ़ सौ और मैं अकेला हूँ, परंतु इस अकेले के हाथों का मजा चख जाओ।"

"जा-जा! अपना मुँह लेकर लौट जा। नाहक औरों के

काम के लिये दीए में पतग क्यों बनता है। उस राड़ गूजरी ने यो ही जीजा-जीजा और जमाई-जमाई कहकर तेरी जान लेने के लिये जोश दिला दिया है। याद रखना, डेढ सौ आदमी हैं ! यदि तेरी ओर थूक दे, तो भी तू बह जायगा। तेरी क्या मजाल, जो हम पर हाथ उठा सके।"

"हैं ! मैं लौट जाऊँ ? चला जाऊँ, तो मेरी जननी लजा जाय। तुम यदि डेढ सौ बकरियाँ हो, तो मैं शेर और डेढ़ सौ चिड़ियों में अकेला बाज हूँ ! घबराओ नहीं ! अभी एक-एक की गिन-गिनकर खबर लिए लेता हूँ। अगर तुम्हें गिन-गिनकर मजा न चखाऊँ, तो मैंने माता लछमा का दूध पाकर भख मारी।"

"हैं ! तू लछमा का बेटा है ? तब तो तू हमारा भानजा हुआ ! वह हमारे राखी बाँधती थी।"

"राखी बाँधती थी, तो अच्छी बात है ! मामाजी गायों को छोड़ जाओ, और मेरी मामियों को लंबी काचलियाँ पहनाकर विधवा मत बनाओ।"

"अरे छोकरे ! फिजूल बातें बनाता है ! भाग जा अपनी जान लेकर। हम डेढ़ सौ बहादुर और तू अकेला छोकरा।"

"अच्छा लीजिए डेढ़ सौ बहादुर मामा साहब ! सँभालिए।" कहकर तेजा ने तीर बरसाना आरभ कर दिया। सच-

मुच ही उधर डेढ सौ और इधर वह अकेला था । एकदम से एक ही बार में उस पर यदि डेढ सौ तीर पड़े, तो उसका शरीर ही टुकड़े-टुकड़े होकर लाश तक का पता लगना मुश्किल हो जाय। परतु क्या अकेले तेजा पर डेढ सौ के डेढ सौ ही तीर मार सकते थे । गायों की सख्या विदित नहीं, परतु जब उन्हें घेरकर ले जानेवाले डेढ सौ थे, तब यदि दो हजार गाएँ मान ली जायँ, तो आश्चर्य नहीं। बस, इतनी गायों को रोकनेवाले भी तो चाहिए। यदि न रोकी जायँ, तो यों ही जगल में तितर-बितर हो जायँ । गाएँ भी तो ऐसी नहीं थीं, जो उन्हें पहचानकर बोली पर रुक सकें । फिर डेढ सौ होने से उन लोगों को घमड भी था कि अकेला छोकरा हम डेढ सौ का क्या कर सकता है ? बस, तेजा के तीरों की भरमार ने सचमुच ही उनको व्याकुल कर दिया। उसने जैसा कहा था, वैसा ही कर दिखाया । उसके एक-एक तीर से एक-एक आदमी मर-मरकर, घायल हो-होकर, जब एक, दो, तीन, चार गिरने लगे, तब मीनों के पैर उखड़ गए । पैर उखड़ जाने से पाठक शायद यह समझ बैठें कि क्या मीनों ने तेजा पर वार किए बिना ही उसे गाएँ सौंप दी होंगी। नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता । हो सकता है कि तेजा को अकेला समझकर उन्होंने इसकी परवाह न करने

से धोखा खाया, परन्तु वे भी खाली हाथों नहीं भागे। जिस समय गाएँ छोड़कर मीने भागे, उनके तीरों की मार से तेजा और उसकी घोड़ी भी कम घायल नहीं हुई थी। दोनों का शरीर सचमुच छिन्न-भिन्न हो गया था। उनका सारा बदन लहूलुहान होकर कपड़े खून से रँग गए थे। दोनों के शरीर में से रक्त टपक-टपककर धरती भिगोता जाता था। गाएँ आगे-आगे घर की ओर मुँह किए हुए अपने-अपने बछड़े-बछिओं से मिलने के लिये उतावली होकर चली जा रही थीं, और तेजा भी घायल वीरों की तरह मतवाले मातंग की नाईं विजय के जोश में झूमता हुआ पनेर की ओर चला जा रहा था।

उस समय उसे अवश्य खयाल हुआ होगा कि "माना को उसकी पूरी-की-पूरी गाएँ पहुँचाने से उसको धन्यवाद मिलेगा।" किंतु धन्यवाद के बदले तेजा को उलाहना मिला। कृतघ्न माना ने तेजा की तारीफ़ करने के बदले, उसका उपकार मानने की जगह और मीठे वचनों से उसका स्वागत करने के स्थान में सचमुच ही अपनी नीचता दिखाई। उसने यह साबित कर दिया कि ऐसी ही नीचातिनीच नारियों की बदौलत रमणी-समाज कलंकित हुआ है। वह बोली—

"अरे सब ले आया तो क्या हुआ ? हाय मेरा एकला

साँड़ ! अरे वही सबकी जान था । हमारे गाँव में दस-बीस कोस तक ऐसा कोई साँड़ नहीं था । उसी की बदौलत मेरी गायों में अच्छे-अच्छे बैल पैदा होते थे, और यों मैं हजारों रुपया कमाती थी । हाय अब मैं क्या करूँगी ? ले जा, तेरी गाएँ मुझे नहीं चाहिए। इतनी गाएँ ! भले ही उनको वापस दे दे। बस, मेरा साँड़ ला दे और नहीं, पहन ले लहँगा ! तैंने कुछ भी न किया ! जब मेरा साँड़ ही नहीं आया, तो औरों का आना किस काम का ?"

"अरे माता गूजरी ! मुझे मत मरवा । मैं यों ही मारा जाऊँगा। उधर वे डेढ़ सौ और इधर मैं अकेला। मेरी चिंदिया बिखर जायगी और मुझे भय है कि मैं उस नाग-देवता से अपना वादा पूरा करने न पाऊँगा ।"

"अच्छा, तो तू डेढ सौ देखकर घबरा गया ? गूलर के फल के डेढ सौ मच्छरों से ? बड़ा बहादुर बनता था ना ? लहँगा पहन ले !"

"हैं ! मैं लँहगा पहनूँ ? लँहगा पहनें पनेर के मर्द ! मैं मारूँगा और मरूँगा ।" कहकर तेजा ने फिर समर-भूमि की ओर घोड़ी की वाग मोड़ दी । पहली बार जब तेजा गया था, तब उसे प्रतिज्ञापालन के लिये जीता लौटकर नाग देवता के दर्शन पाने की आशा

थी। मरना तब भी था और अब भी है, परन्तु तब वचन का निर्वाह करके मरना था, अब प्रतिज्ञा की धरोहर छाती पर लादकर मरने चला। तब शत्रु के बाणों की मार से उसका शरीर छिन्न भिन्न हो गया था, अब जीवित लौटने की आशा त्यागकर चला और ठानकर चला कि अब समराग्नि में अपने शरीर को, प्राण को, प्रतिज्ञा को और सर्वस्व को होम कर देना है। बस, यही ठानकर वह रणोन्मत्त होकर चला, और मारा-मारा घोड़ी को दौड़ाकर तेजा ने फिर उन मीनों को जा पकडा। दूर से ही वह ललकारकर बोला—

"मामाजी, बैल लेकर कहाँ जाते हो? इसे तो दे जाओ। इतनी जानें खोकर भी यदि लड़ने से पेट न भरा हो, तो एक बार फिर देख लो भानजे के हाथ!"

बस, इसके अनतर खूब ही मारा-मारी हुई। इधर मीनों के तीरों की मार से तेजा के घाव-पर-घाव लगने लगे, और उधर तेजा के तीर फिर पहले की तरह एक-एक वार से एक-एक आदमी को गिरा-गिराकर धराशायी करने लगे। वास्तव में घमासान युद्ध मच गया। मरनेवालों की लाशों से, घायलों के आर्तनाद से और तेजा के रक्तप्रवाह से गहरा झगडा मच गया। मासभोजी रक्तलोलुप पशु-पक्षियों की

खूब दावतें हुई। अंत में मीने हारकर भाग गए। एकला साँड अथवा गानेवालों के शब्दों में "काने बछड़े" को लेकर तेजा विजय की हँसी हँसता वापस आ गया।

सातवाँ अध्याय

प्रतिज्ञापालन मे आत्मबलि

जिस समय माना गूजरी का "काना बछड़ा" लेकर, तेजा घायल शरीर से, रणोन्मत्त होकर झूमता-झामता, गिरता-पडता और फिर सँभलता शत्रुओं का दमन करता हुआ सचमुच ही गूलरफल के जीवों की तरह रणचडी के वीर मीनों की बलि चढाता पनेर के पास पहुँचा, तो पहली मुठ-भेड उसकी गूजरी माना से ही हुई। माना ने तेजा का अपने ही स्वार्थ के लिये विनाश करवाने पर भी अपना "एकल सॉड" पाकर उसे धन्यवाद दिया या नहीं सो गानेवाले नहीं कहते। वे ये भी नहीं बतलाते कि "वचने का दरिद्रता" के सिद्धात से उसने तेजा से दो-चार मीठे शब्दों से उसके मन का थोड़ा-बहुत समाधान भी किया या नहीं। जब वह तेजा को मरवाने के लिये ही पैदा हुई थी, जब रणदेवी को तेजा-जैसे वीर की बलि चढ़ाना ही उसका इष्ट था, और जब गानेवाले उसे तेजा का विनाश करनेवाली देवी बतलाते हैं, तब वह तेजा को आशीर्वाद ही क्यों देने लगी। वह इस तरह के एक

शब्द का उच्चारण किए बिना ही अपना "काना बछड़ा" लेकर वापस चल दी। वह इस तरह चल दी, और तेजा ने भी अब उसे वहाँ ठहरने न दिया। आजकल के लोगों की तरह तेजा का उस समय भी ख़याल था कि मैली-कुचैली औरत की परछाहीं पड़ने से उसके घाव बिगड़ जायँगे। जब वह तेजा का सचमुच ही काम तमाम कर चुकी थी, तब उसे गरज़ ही क्या पड़ी थी, जो अब वहाँ ठहरकर वह तेजा की मरहम-पट्टी करने की झूठ-मूठ मनुहार करती।

अस्तु! उसने वहाँ से चलकर तेजा के "अब तब" हो जाने की ख़बर उसकी ससुरालवालों को दी। जिनको तेजा पर, न-मालूम क्यों, घृणा थी, जो उसके साथ साफ़ दुश्मनी दिखला चुके थे, और जिन्होंने तेजा की जान की तिनके की तरह बिलकुल परवा न की, वे आते तो आते ही क्यों? वहाँ से आई केवल तेजा की गृहिणी और उसे अपने पति के पास जाने से रोकने के लिये उसकी कृत्या माता। तेजा की स्त्री पति की ऐसी दशा देखकर रोने लगी। उसने रो-रोकर आकाश गुँजा डालने में बिलकुल कोताही नहीं की। उसने पति के चरणों में लोटकर उसे बहुतेरा समझाया—बहुत कुछ प्रार्थना की, और यहाँ तक कहा कि "गाँव में चलो, मैं तुम्हारी सेवा करूँगी, और तुम्हें अवश्य

आराम होगा।" परन्तु तेजा ने उसकी बात पर कान नहीं दिया। उसने साफ कह दिया—

"मैं अपना कर्तव्य पालन कर चुका। अब मुझे जीकर ही क्या करना है? मैं मर चुका और जब तक मैं नाग देवता के पास पहुँचकर अपनी प्रतिज्ञा पालन न कर लूँ, तब तक एक-एक मिनट मेरे लिये भारी है। मैं यदि उसके निकट पहुँचने से पहले ही मर जाऊँ, तो मेरी बात में बट्टा लग जाय। इसलिये मैं उधर जाता हूँ, और तू अपने बाप के यहाँ जाकर मौज कर।"

"सो मुझसे नहीं हो सकेगा। जहाँ तुम वहाँ मैं। तुम जिओगे, तो मैं जिऊँगी और तुम   " इतना कहते-कहते बोदल का कंठ भर आया। वह न कह सकी कि "तुम मरोगे तो मैं भी मर जाऊँगी।" हिंदुओं में भले घर की बहू-बेटियाँ सौभाग्यवती रमणियाँ अपनी जबान से ऐसा कभी नहीं कह सकती हैं। यदि भूल से भी उनके मुँह से ऐसी बात निकल जाय, तो उन्हें मरणांत कष्ट होता है। अच्छा, उसका गला भर जाने से उसने आगे नहीं कहा और नहीं कहने दिया उसकी राक्षसी माता ने। उसने फौरन् ही बेटी का गला पकड़ लिया। वह बोली—

"इस निपूते के साथ तुझे मैं कभी मरने न दूँगी। यह कल

मरता आज ही क्यों न मर जाय। अच्छी बात है, मर जाय, तो मैं तुझे दूसरा अच्छा खसम करा दूँगी। मेरी गोरी-गोरी बेटी के लिये एक नहीं—अनेक तैयार हैं। इस मुए से हजार दर्जे अच्छे। जिनके यहाँ जाकर मेरी बेटी मौज उडावे।"

"अपनी दूसरी बेटी को खसम कराइयो अथवा तू ही बुढापा भड़काने के लिये दूसरा खसम कर लीजियो। खसम का नाम लेते तेरी जीभ नहीं जल जाती? जो बेटी के लिये ऐसी बुराई सोचती है, उस पर, भगवान् करे, बिजली पड़े। यह माता नहीं पूतना माता है। अपने बेटे-बेटी को दूध के बदले जहर पिला देनेवाली माता है।"

"अरे मान जा बेटी! मरे के साथ मत मर। जब जाटों में एक मरने पर दूसरा और दूसरा मर जाने पर तीसरा कर लेने की चाल है, और जब जाटिनी पति से कष्ट पाकर अपने सात फेरे के खाविंद को छोड़ सकती है, तब तू नाहक ही इस मुए के साथ क्यों मरती है। इसका हाथ पकड़कर तूने सुख ही कौन-सा पाया है, जो तू मरने चली है?"

"अम्मा, दुःख-सुख अपने नसीब का है। जो जैसा करता है वैसा ही पाता है। मैंने जैसा किया, वैसा पा लिया।

जब एक से ही सुख नहीं मिला, तो दूसरे से मिलने की क्या आशा है? फिर सुख भी मिले, तो किस काम का? फूँक दे ऐसे सुख को! आग लगा दे ऐसे नए खाविंद को! मुझे ऐसा नहीं चाहिए।"

"अरे मान जा बेटी! अपनी जननी का कहा मान जा। मरे के साथ कोई भी नहीं मरता है। जिनमें दूसरा खाविंद करने की चाल नहीं है, वे भी नहीं मरती हैं।"

"यह अपना-अपना मन है। अपनी-अपनी ताकत है। मैं मरूँगी और अपने बहादुर स्वामी के चरणों में लोटकर जल मरूँगी।"

"अरे बावली! जो रोटियाँ सेकने में उँगली जल जाने से रो-रोकर घर भर डालती है, उससे दहकती हुई चिता में—ज्वाला छोड़-छोड़कर जमीन आसमान एक कर डालनेवाली आग में—कैसे जला जायगा। मान जी। कहा मान। बेटी जिद मत कर। नाहक हठ करके अपनी फजीहत न करा।"

"बस जा! जा! अपना मुँह लेकर चल दे। ऐसी झूठी बातें करके मेरा सत मत डिगा। मैं मरूँगी और जरूर ही जल मरूँगी।"

यों कोरा उत्तर पाकर बोदल की माता वहाँ से चल दी, किंतु गई तेजा को कोसती, और बेटी को गालियाँ सुनाती हुई। मास के चले जाने के बाद तेजा ने भी अपनी स्त्री को बहुत कुछ समझाया-बुझाया—बहुतेरा उसको बाप के यहाँ लौटा देने का हठ किया, किंतु प्राणनाथ के चरण पकड़कर उनमें अपना सिर रख देने के सिवा, आँसुओं की धारा-प्रवाह से पति-चरणों को सिंचन कर प्राणनाथ के अंतर्दाह को शमन करने और अपने कलेजे की दहकती हुई ज्वाला को शांत करने के अतिरिक्त उसने एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला। बस, इससे तेजा ने समझ लिया कि विवाह के बाद चौबीस वर्ष के अवसर में एक दिन के लिये भी दांपत्य सुख प्राप्त न होने पर भी बोदल का व्रत अटल है। अब हज़ार सिर पटकने पर यह माननेवाली नहीं। जब पति के साथ जाने की इसने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली है, तब सचमुच आग्रह करके इसका सत बिगाड़ना अच्छा नहीं। बस मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा में इसकी दृढ़ प्रतिज्ञा मिल गई, इस तरह पक्का मनसूबा बाँधकर दोनों वहाँ से चल दिए। पहले तेजा अकेला था, किंतु अब यदि दोनों के अलग प्राण और अलग तन माने जायँ, तो एक और एक ग्यारह हो गए। किंतु नहीं, हिंदुओं के सिद्धांत के अनुसार "एक प्राण दो तन", और इस बात

को दोनों ने थोड़ी देर के बाद सिद्ध भी कर दिखाया।

वे दोनों मार्ग में किस तरह गए, सो कोई बतलानेवाला नहीं है। किंतु वन-वन भटककर दोनों ने उस साँप की बाँबी का पता लगाया। दोनों की संयुक्त प्रार्थना से जब नागदेव बाहर आए, तब हाथ जोड़कर, धरती पर माथा टेककर और आँचल पसारकर रोती हुई बोदल बोली—

"राजाओं के राजा, हे वासक (वासुकि) राजा, मुझ गरीब पर दया करके मेरे खाविंद को छोड़ दो। चौबीस वर्ष में एक दिन के लिये, एक पल के लिये भी मैंने सुख नहीं भोगा। एक के बदले दो-दो हत्या क्यों लेते हो?"

"नहीं! इसमें मेरा दोष नहीं है। तेरा खाविंद खुद मुझसे प्रण कर गया है। यदि वह अब भी कह दे कि मैंने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ी, तो मैं छोड़ सकता हूँ। वह यहाँ अपना प्रण पूरा करने के लिये स्वयं आया है। मैं उसे बुलाने नहीं गया हूँ।" नाग देवता से ऐसा उत्तर पाते ही तेजा इस तरह उछल पड़ा, जिस तरह पका फोड़ा छूने से बीमार उछल पड़ता है। वह अवश्य "अब तब" हो रहा था, किंतु अपने जोश को न सँभाल सका। उसने घावों की पीड़ा से अत्यंत व्याकुल होने पर भी जोश में आकर ज़ोर के साथ कहा—

"नहीं, हरगिज नहीं! मैं अवश्य अपने वचनों का बाँधा हाज़िर हूँ। मैं अपने प्रण को लातों से कुचलनेवाला नहीं हूँ। मुझसे यह कभी नहीं हो सकता कि मैं वचन चूक जाऊँ। दुनिया में वचन चूक जाने के बराबर पाप नहीं। महाराज मुझे वचन-चूक बाँदी का जाया नहीं कहलाना है। आप खुशी से जहाँ जी में आवे डसें। मैं तैयार हूँ।"

"हाँ-हाँ! तू तैयार है, तो मैं भी तैयार हूँ। तू अपना प्रण निर्वाह करना चाहता है, तो मुझे भी उज्र नहीं है, परंतु (तेजा को नख से शिख तक निहारकर) तुझे डसूँ भी, तो कहाँ पर डसूँ। सिर से पैर तक कोई जगह भी तो खाली मिले! सारा बदन तीरों की मार से छिन्न-भिन्न हो रहा है। खून में तर है। माम निकल पड़ा है। कहीं तिल धरने की भी तो जगह नहीं है।"

"अच्छा इनके बदन मे जगह नहीं है, तो बाबा बासक (वासुकि) मुझे डस लो। मेरा सारा शरीर खाली है, और (पति की ओर इशारा करके) जैसे यह वैसी मैं। जिस दिन हमारा हथलेवा हुआ, जिस दिन से हमने भाँवरी फिरी, उस दिन से एक प्राण दो तन हुए। और, एक हों चाहे अलग-अलग हों, तुम्हें एक की हत्या करने से गरज। बस, इनको छोड़कर मुझे काटो। इनके सामने मर जाने ही में मेरा

भला है। यह जीते रहकर सुख पावें, तो मैं सुख से मरूँ।"

घाड़ी बोली—"अजी आप इन दोनों ही को क्यों डसते हो? मैं तैयार हूँ। मुझे डसो और मेरे मालिक-मालिकिन को सुख पाने के लिये छोड़ दो। मुझ-जैसी इन्हें बहुत मिल जायँगी।"

"बस-बस! समझ लिया! तू इन दोनों को वकील बना-कर अपने प्राण बचाने आया है। जो मरने से नहीं डरता है, तो इन्हें क्यों लाया। बोल, अब भी जान प्यारी है, तो भिक्षा माँग।"

बस, नाग देवता के मुँह से ऐसी बात निकलते ही फिर तेजा को जोश आया। फिर वह ललकारकर कहने लगा—"नहीं-नहीं, ऐसा हरगिज न होने दूँगा! मैं जरूर अपने वचनों को पालूँगा। अगर मारा शरीर ही आपके डसने लायक़ नहीं रहा है, तो (जीभ निकालकर) इसे डसिए महाराज! यह अछूत है।"

"अच्छा, आपको एक के साथ तीन जान लेनी हैं, तो भले ही डसें।" इस तरह घोदल के मुख से और "मालिक मर जाय, तो मुझे भी जीकर क्या करना है" यों घोड़ी के कहने पर तेजा ने अपनी जीभ फैलाई, और तब नागराज ने तेजा की जीभ

"नहीं, हरगिज नहीं! मैं अवश्य अपने वचनों का बाँधा हाज़िर हूँ। मैं अपने प्रण को लातों से कुचलनेवाला नहीं हूँ। मुझसे यह कभी नहीं हो सकता कि मैं वचन चूक जाऊँ। दुनिया में वचन चूक जाने के बराबर पाप नहीं। महाराज मुझे वचन-चूक बाँदी का जाया नहीं कहलाना है। आप खुशी से जहाँ जी में आवे डसें। मैं तैयार हूँ।"

"हाँ-हाँ! तू तैयार है, तो मैं भी तैयार हूँ। तू अपना प्रण निर्वाह करना चाहता है, तो मुझे भी उज्र नहीं है, परन्तु (तेजा को नख से शिख तक निहारकर) तुझे डसूँ भी, तो कहाँ पर डसूँ। सिर से पैर तक कोई जगह भी तो खाली मिले! सारा बदन तीरों की मार से छिन्न-भिन्न हो रहा है। खून में तर है। मांस निकल पड़ा है। कहीं तिल धरने की भी तो जगह नहीं है।"

"अच्छा इनके बदन में जगह नहीं है, तो बाबा बासक (वासुकि) मुझे डस लो। मेरा सारा शरीर खाली है, और (पति की ओर इशारा करके) जैसे यह वैसी मैं। जिस दिन हमारा हथलेवा हुआ, जिस दिन से हमने भाँवरी फिरी, उस दिन से एक प्राण दो तन हुए। और, एक हों चाहे अलग-अलग हों, तुम्हें एक की हत्या करने से गरज। बस, इनको छोड़कर मुझे काटो। इनके सामने मर जाने ही में मेरा

भला है । यह जीते रहकर सुख पावें, तो मैं सुख से मरूँ।"

धाढी बोली—"अजी आप इन दोनों ही को क्यों डसते हो ? मैं तैयार हूँ । मुझे डसो और मेरे मालिक-मालिकिन को सुख पाने के लिये छोड दो । मुझ-जैसी इन्हें बहुत मिल जायँगी।"

"बस-बस ! समझ लिया ! तू इन दोनों को वकील बनाकर अपने प्राण बचाने आया है। जो मरने से नहीं डरता है, तो इन्हें क्यों लाया । बोल, अब भी जान प्यारी है, तो भिक्षा माँग।"

बस, नाग देवता के मुँह मे ऐसी बात निकलते ही फिर तेजा को जोश आया। फिर वह ललकारकर कहने लगा—"नहीं-नहीं, ऐसा हरगिज न होने दूँगा ! मैं जरूर अपने वचनों को पालूँगा। अगर मारा शरीर ही आपके डसने लायक़ नहीं रहा है, तो (जीभ निकालकर) इसे डसिए महाराज ! यह अछूत है।"

"अच्छा, आपको एक के साथ तीन जान लेनी हैं, तो भले ही डसें।" इस तरह बोदल के मुख से और "मालिक मर जाय, तो मुझे भी जीकर क्या करना है" यों धाढी के कहने पर तेजा ने अपनी जीभ फैलाई, और तब नागराज ने तेजा की जीभ

का खून पीकर अपना कलेजा ठंडा किया। इस तरह जब वह अच्छी तरह तृप्त हो चुका, तब बोदल से बोला—

"तुम हम तीनों के लिये—अपने, मेरे और तेजा के लिये—एक ही चिता तैयार करो। इस बहादुर सच्चे तेजा के साथ तू तो जलेगी ही, सात फेरे की औरत है, परंतु मैं भी जलूँगा। मैंने सारी लीला इसीलिये की है। एक ही चिता में तीनों के भस्म हो जाने के बाद तेजा की पूजा तेजा के नाम से और मेरी देवलालजी के नाम से होगी। हमारे मंदिर में जो मूर्ति पधराई जायगी, उसमें तेजा, उसके गले में मैं और पास तू खड़ी हुई होगी। घोड़ी तेजा की अवश्य होनी चाहिए, क्योंकि (घोड़ी की ओर संकेत करके) यह उसे बहुत प्यारी थी। परंतु यह भी अगर यहाँ मर मिटेगी, तो तेजा के घर पर खबर देने कौन जायगा, और वहाँ पहुंचे बिना मेरा काम सिद्ध क्योंकर होगा ?"

जब बोदल ने पूछा—"आपका काम कौन-सा ?" तो नागराज ने उत्तर में कहा—"वही हमारी पूजा होने का। इसी मतलब से मैंने इसे डसा है। मतलब मेरा यही है कि तेजा के नाम पर जो कोई आदमी या जानवर को "डसी" बाँध देगा, उस पर साँप के काटे का असर बिलकुल न होगा। बस, इस तरह नाम अमर करके लोगों का सैकड़ों

पीढियों तक उपकार करने के लिये—हजारों-लाखों जीवों के प्राण बचाने के लिये यह कौतुक है।"

"अच्छा महाराज! आपकी इच्छा" कहकर बोदल चुप हो गई। तब उसने पति का मस्तक अपनी गोदी में से उतारकर एक साफ-सुथरी-सी जगह पर धरती में लिटाया। पति को लिटाने के बाद उसने हँसते-हँसते प्रसन्न होकर जंगल की लकड़ियाँ इकट्ठी कीं। यों चिता तैयार की। कहीं से तलाश करके चिता में आग दी, और जब नीचे से वह अच्छी तरह जल उठी, तब पति को उस पर लिटाकर लपककर उस पर चढ़ बैठी। पति का मस्तक अपनी गोदी में रखकर बड़ी दृढ़ता के साथ बैठ गई। उसकी आँखों में आँसू की एक बूँद नहीं। मुख पर उदासी की बिलकुल झलक नहीं। बस, मुख-कमल पर मुसकिराहट, आँखों में मीठी मीठी हँसी और जबान पर भगवान् के नाम के साथ पति के चरणों में टकटकी। जलते-जलते उसने माता-पिता को शाप अवश्य दिया "तू सुअरी हो जा और तू लोमड़ा।" क्रोध के मारे उसकी जबान से इतना निकला, सो निकला। उसने भाई को फलने-फूलने का, अन्न-धन बढ़ने का आशीर्वाद भी दिया। किंतु आनंद के साथ अपने कर्तव्य-पालन से प्रसन्न होते हुए—मानो आज अखंड ऐश्वर्य पा लिया—इस प्रकार के हर्ष में उसने सती

चिता के साथ पातिव्रत की अनत ज्वाला में अपना सुख, अपना सौभाग्य, अपना शरीर और अपना प्राण तक होम कर दिया। ज़रा-सी चिनगारी छू जाने पर जो सत्ताईस बार सी-सी करती थी, जो मरने की गाली सुनकर मारने को दौड़ती थी, उसने आज पैर जलने पर, हाथ जलने पर, शरीर जलने पर और मस्तक जल जाने पर एक बार सी तक नहीं की। लोग कहते हैं कि स्वामी की मुहब्बत स्त्री को विह्वल कर चिता में भस्म कर डालती है, परतु उसे स्वप्न में भी पति से प्यार करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। विवाह के दिन यदि सयोग से दपति की चार नज़रें हो गई हों, तो याद नहीं। वे चार नज़रें दुधमुँहे बालक-बालिका की थीं, किंतु आज के सिवा दोनों ने एक दूसरे को कभी नज़र-भर देखा तक नहीं। तब प्रेम का वास्ता कैसा? किंतु जैसे तेजा ने अपने कर्तव्य की रक्षा के लिये, अपना नाम अमर कर जाने की इच्छा से, अपने प्यारे प्राणों की प्रतिज्ञादेवी को बलि चढा दी, उसी तरह बोदल ने आत्म-विसर्जन कर दिया। यों दोनों शरीर छोड़ देने पर भी मरे नहीं, जीते हैं। उनका यश उसी समय चिता की ज्वाला के साथ गगन-मडल को भेदता हुआ स्वर्ग की अप्सराओं से गाया जाने लगा। बस, इसी का यह परिणाम है कि अनेक वर्ष बीत जाने पर भी देवताओं की तरह उनकी पूजा होती है।

आठवाँ अध्याय

अंतिम दृश्य

यों दंपति की चिता में नागराज को भस्म कर देनेवाली ज्वालाएँ सूँ-सूँ शब्द के साथ धुआँ के हरकारों को आगे भेजकर जब आकाश से सूर्य-मंडल को भेदती हुई स्वर्ग के देवताओं द्वारा विष्णु भगवान् के चरण-कमलों में तेजा के और बोदल के कर्तव्य-पालन का तथा नागराज की कामना का पैग़ाम पहुँचा, तब घायल घोड़ी ने अपने मालिक के चिर-वियोग का मरणांत दुःख आजीवन अपने हृदय में धारण कर माता लछमा (लक्ष्मी) के पास यह हृदय-विदारक शोक-संवाद पहुँचाने के लिये रास्ता लिया। घोड़ी बेशक घायल हो चुकी थी। उसके प्राण भी अपना सदा का अड्डा छोड़कर कंठ में आ चुके थे। क़दम-क़दम पर "यह गिरी, वह पड़ी" की हालत में आ पहुँची थी। जब ऐसा बहादुर मालिक मर चुका था, तब उसे जीकर ही क्या करना था? अब मरी तो मरी और घंटे-भर बाद मरी तो मरी। परंतु यदि पैग़ाम पहुँचाने का कर्तव्य-पालन करने से पहले ही मर जाय, तो घोड़ी की जाति पर बट्टा लग जाय। उसका खेत ही कलंक का टीका

गोली की मार से शरीर कई जगह छिद रहा है। तीर जो बदन में घुस रहे हैं, उन्हें कोई निकालनेवाला नहीं। "बस, हाय रे गजब हो गया! हाय रे बेटा! मैं तो तुझे पहले ही मना करती थी।" यों कहती हुई मालिकिन मूर्च्छित होकर एक तरफ, और अपने कर्तव्य से निवृत्त होकर धड़ाम से घोड़ी दूसरी तरफ गिर गई। धड़ाम-धड़ाम की दो बार आवाज़ें सुनकर घर के, बाहर के, मुहल्ले के, सब दौड़े हुए आए। वास्तव में पैगाम देनेवाला कोई नहीं था, परन्तु अटकल से उन्होंने जान लिया कि तेजा मारा गया। जब लछमा सचेत हुई, तब खूब ही रोई-झींकी, और घरवाले भी रोए, गाँववालों ने, अड़ोसी-पड़ोसियों ने उनके साथ सहानुभूति दिखलाई! विशेष लिखकर पाठकों का हृदय दुखाने से कुछ लाभ नहीं है। ऐसे समय में जो कुछ होता आया है, सब ही हुआ।

गानवाले कहते हैं—"माता से घोड़ी ने सारा क़िस्सा कह सुनाया था।" इस पर कोई भरोसा करे या न करे, उसे अधिकार है। यदि उसका आदमी की तरह बोलना असंभव है, यदि इसी तरह साँप का बातचीत करना असंभव है, तो तेजा को मरते-मरते जिला देनेवाले—साँप के काटे को प्राण-दान करनेवाले और यों असंभव को संभव कर दिखानेवाले चमत्कार के प्रसंग में हैं। राजपूताने के, जो लाखों आदमी

इन चमत्कारों को सत्य मानते आए हैं, उनके लिये तो सत्य है ही, किंतु जिनके हृदय की ऊसर भूमि में हज़ार बीज पड़ने पर भी विश्वास का अंकुर नहीं जम सकता, वे मान लें कि घोड़ी ने दोनों जगह इशारों से समझा दिया था। जो घोड़े-घोड़ी के स्वभाव का अध्ययन करनेवाले हैं, अथवा, जिन्होंने प्राणि-विद्या का अनुशीलन किया है, वे अवश्य मानेंगे कि पशु-पक्षियों की, कीट-पतगादिकों की भी कोई भाषा है, और जो अभ्यास करता है, उसके लिये, असाध्य नहीं है, कष्टसाध्य भले ही हो।

अच्छा, जो जैसे माने, उसे वैसे ही मानने दीजिए। घोड़ी के बताए हुए ठिकाने पर तेजा की तलाश करने के लिये घायल घोड़ी के खुरों तथा उसके रक्त-बिंदुओं के चिह्न के सहारे-सहारे तेजा की माता, उसका पिता और संगे-साथी बैलगाड़ी पर सवार होकर चल दिए। घोड़ी के प्राण-पखेरू वहीं उड़ गए।

अपने मालिक-मालकिन के आत्मविसर्जन की सूचना देने के अनंतर जब घोड़ी ने अपने प्यारे प्राणों का त्याग कर दिया, तब उसकी तो कथा ही समाप्त गई। ऐसी स्वामिभक्त घोड़ी का यदि किसी ने बनाया, तो क्या और न बनाया, तो उसे

जब घर में एकदम से दो-दो स्वजनों का चिर-वियोग हो गया, तब उस बेचारी की सुध लेनेवाला भी कौन ? अस्तु, तेजा के माता-पिता, बन्धु-बांधव, नौकर-चाकर जंगल-जंगल ढूँढते हुए उसी जगह जा पहुँचे, जहाँ तेजा की, उसकी अर्द्धांगिनी बोदल की और साथ ही उस सर्प की राख का ढेर-चिता-भस्म में मिलकर उनका नाम शेष रह गया था। थोड़ी-सी हड्डियाँ और थोड़ी-सी आग के सिवा वहाँ कोई नाम निशान नहीं। यदि तेजा और उसकी स्त्री का भस्मावशेष हो गया, तो हो गया, किंतु उसके शस्त्रों के सिवा ऐसी कोई चीज नहीं बची, जिसे छाती से लगाकर उसके माता-पिता अपना कलेजा ठंढा कर सकें। प्रियजनों की प्यारी वस्तु का उनके चिर वियोग के अनंतर दर्शन प्रियदर्शन नहीं है। उसे देखने से सुख के बदले दुःख होता है। बस, यही दशा उसके माता-पिता की हुई। "हाय तेजा! अरे प्यारे पूत! ओ बुढ़ापे की लकडी! हाय हमें मँझधार में डालकर कहाँ चल दिया! हाय रे! हे भगवान्! हमें भी मौत दे दो।" कहते-कहते दोनों बेहोश! वे दोनों इस तरह अचेत भी हुए, और समय पाकर उन्हें होश भी आया। उन्होंने उस जगह दंपति की अन्त्येष्टि-क्रिया की अथवा नहीं, दोनों की अस्थियाँ गंगाजी भेजी गईं अथवा नहीं, सो कोई नहीं कह सकता।

किंतु जब तेजा इतना पराक्रम दिखलाकर, केवल सत्य के लिये अपनी बलि चढ़ाकर स्वर्ग को सिधारा था, जब उसकी अभिलाषा और नागराज की आज्ञा थी, तब उस जगह चबूतरा बनवाकर उस पर उनकी मूर्ति स्थापित की गई और इस तरह इस दुःखांत कथा की यहीं समाप्ति हो गई।

संस्कृत-साहित्य में 'दुःखांत'-नाटक दूषित समझा जाता है, और मैं भी उसे पसंद नहीं करता हूँ। दुःखांत से दर्शकों अथवा पाठकों के अंतःकरण पर प्रभाव पड़ता है सही, परंतु जिसके असर से हृदय काँपता रहे, वह प्रभाव नहीं। भय की छाया है। और, भय, शोक और वेदना मनुष्य को कीटभृंग की नाईं उसी में गिरा देती है, इसलिये दुःख के अनंतर सुख होना चाहिए। मैंने अभी तक जो कुछ लिखा-लिखाया है, सब केवल इसी उद्देश्य से। परंतु यह नियम कल्पना के मनोराज्य में आसन पा सकता है, सत्य घटना में नहीं। और, तेजा की जो कहानी है वह सत्य घटनामूलक है। बस, इसलिये मुझे 'दुःखांत' लिखने की लाचारी ग्रहण करनी पड़ी। अस्तु जो कुछ होना था, सो हो गया। जब मुझे दुःखांत लिखना ही इष्ट नहीं हैं, तब इस पुस्तक के अंतिम दृश्य को अधिक मर्म-भेदी, विशेष हृदय-द्रावक शब्दों में दिखलाकर पाठकों

चर्म-चक्षुओं से या हृदय की आँखों से रुलाना भी अच्छा नहीं।

तेजा का परलोकवास भाद्र शुक्ला १० को हुआ। इसमें किसी तरह का संदेह नहीं। राजपूताने-भर में इसी दिन तेजा-दशमी के नाम से उत्सव होता है, किंतु उसके जन्म का दिन कौन और संवत् कौन था, इस बात का पता जब राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुंशी देवीप्रदासजी को ही नहीं लगा, तब मुझ अकिंचन को लगने की आशा क्या, हाँ! गानेवालों के कथन से विदित हुआ है कि संवत् १ की यह घटना है। परंतु यह एक किस शताब्दी का एक है, सो किसी को मालूम नहीं। इसलिये इस "एक" का मालूम होना और न होना बराबर है। गत पृष्ठोंके पढनेसे इतना अनुमान होता है कि जिस समय की यह घटना बतलाई जाती है, उस समय राजपूताने, बल्कि भारतवर्ष में भयानक अराजकता थी। किसी की जान और माल की खैर नहीं थी। यदि कोई कारण हो सकता है, तो यही जिससे तेजा को उसकी माता ने पीहर में बहू जवान हो जाने पर भी उसका मुकलावा कराने के लिये नहीं जाने दिया। मुंशी देवीप्रदासजी की खोज से जब पर्बतसर (मारवाड़) में तेजाजी की मूर्ति के निकट संवत् १७६१ मिती भाद्रपद कृष्ण ६ शुक्रवार को महाराज अभय-

सिंहजी के राज्य में प्रधान भंडारी विजयराज का मूर्ति पधराकर प्रतिष्ठा करने का उल्लेख है, तब यह तो निश्चय हो ही गया कि यह घटना संवत् १७६१ अर्थात् १८० वर्ष से पूर्व की है। कितने वर्ष पूर्व की, इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये कुछ अटकल से काम लेना पड़ेगा। जो महाशय अपनी अटकल पर ज़ोर लगाकर परिणाम निकाला चाहें, वे निकाल सकते हैं। मेरे अनुमान से यह घटना उस समय की होनी चाहिए, जब राजपूत-नरेशों की शक्ति नाम शेष रह गई थी। वह समय औरंगज़ेब के शासन के लगभग है। अस्तु।

पुस्तक को समाप्त करने से पूर्व तेजा के जन्म-स्थान का, उसकी ससुराल का और उस स्थल का जहाँ उसने आत्म-विसर्जन किया, पता लगाने की आवश्यकता है। मुंशी देवी-प्रसादजी न-मालूम किस आधार पर बतलाते हैं कि तेजा खड़नाल परगने नागौर राज्य जोधपुर का रहनेवाला था। किंतु गानेवाले उसकी जन्मभूमि रूपनगर राज्य किशनगढ़ में बतलाते हैं। मैं गानेवालों के कथन से मुंशीजी की खोज को विशेष प्रामाणिक मानता हूँ, किंतु एक ही बात से मुझे "खोज" पर संदेह होता है। बात यह है कि तेजा के लिये जब बनना मुंशीजी पर्वतसर में स्वीकार करते हैं तब है कि खड़नाल छोड़कर उसके माता-पिता ने

चर्म-चक्षुओं से वा हृदय की आँखों से रुलाना भी अच्छा नहीं।

तेजा का परलोकवास भाद्र शुक्ला १० को हुआ। इसमें किसी तरह का संदेह नहीं। राजपूताने-भर में इसी दिन तेजा-दशमी के नाम से उत्सव होता है, किंतु उसके जन्म का दिन कौन और संवत् कौन था, इस बात का पता जब राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुंशी देवीप्रदासजी को ही नहीं लगा, तब मुझ अकिंचन को लगने की आशा क्या, हाँ! गानेवालों के कथन से विदित हुआ है कि संवत् १ की यह घटना है। परंतु यह एक किस शताब्दी का एक है, सो किसी को मालूम नहीं। इसलिये इस "एक" का मालूम होना और न होना बराबर है। गत पृष्ठोंके पढनेसे इतना अनुमान होता है कि जिस समय की यह घटना बतलाई जाती है, उस समय राजपूताने, बल्कि भारतवर्ष में भयानक अराजकता थी। किसी की जान और माल की खैर नहीं थी। यदि कोई कारण हो सकता है, तो यही जिससे तेजा को उसकी माता ने पीहर में बहू जवान हो जाने पर भी उसका मुकलावा कराने के लिये नहीं जाने दिया। मुंशी देवीप्रदासजी की खोज से जब पर्वतसर (मारवाड़) में तेजाजी की मूर्ति के निकट संवत् १७९१ मिती भाद्रपद कृष्ण ६ शुक्रवार को महाराज अभय-

सिंहजी के राज्य में प्रधान भंडारी विजयराज का मूर्ति पधराकर प्रतिष्ठा करने का उल्लेख है, तब यह तो निश्चय हो ही गया कि यह घटना संवत् १७६१ अर्थात् १८० वर्ष से पूर्व की है। कितने वर्ष पूर्व की, इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये कुछ अटकल से काम लेना पड़ेगा। जो महाशय अपनी अटकल पर ज़ोर लगाकर परिणाम निकाला चाहें, वे निकाल सकते हैं। मेरे अनुमान से यह घटना उस समय की होनी चाहिए, जब राजपूत-नरेशों की शक्ति-नाम शेष रह गई थी। वह समय औरंगजेब के शासन के लगभग है। अस्तु।

पुस्तक को समाप्त करने से पूर्व तेजा के जन्म-स्थान का, उसकी ससुराल का और उस स्थल का जहाँ उसने आत्म-विसर्जन किया, पता लगाने की आवश्यकता है। मुंशी देवी-प्रसादजी न-मालूम किस आधार पर बतलाते हैं कि तेजा खड़नाल परगने नागौर राज्य जोधपुर का रहनेवाला था। किंतु गानेवाले उसकी जन्मभूमि रूपनगर राज्य किशनगढ़ में बतलाते हैं। मैं गानेवालों के कथन से मुंशीजी की खोज को विशेष प्रामाणिक मानता हूँ, किंतु एक ही बात से मुझे "खोज" पर संदेह होता है। बात यह है कि तेजा के लिये जब स्मारक बनना मुंशीजी पर्वतसर में स्वीकार करते हैं, तब संभव नहीं है कि खड़नाल छोड़कर उसके माता-पिता ने उसका पत्थ-

तरा इतनी दूर पर पर्वतसर में बनाया हो। गानेवाले तेजा का घर रूपनगर में बतलाते हैं, और यहाँ से पर्वतसर दो-तीन कोस से अधिक नहीं। बस, इसलिये अधिक सभव यही है कि उसकी जन्मभूमि रूपनगर में थी।

खैर, कुछ भी हो, पनेर के विषय में भी इसी तरह का मत-भेद है। मुशीजी की खोज के अनुसार गाँव पनेर किशनगढ़ राज्य में बतलाया जाता है। किंतु न तो नक़्शे के देखने से किशनगढ़ राज्य में किसी पनेर नामधारी गाँव का पता लगा और न गानेवालों की बातपर ध्यान देने से। यह बात अटकल के तराजू पर तुल सकती है। यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि गानेवालों के मत से तेजा को रूपनगर से गोकर्णेश्वर के निकट बनास पार करके पनेर जाना पड़ा था। राजमहल राज्य जयपुर में छावनी देवली के निकट गोकर्णेश्वर महादेव का सुप्रसिद्ध मदिर है। इस बात पर विश्वास करने से पनेर का होना डुगारी के निकट कहीं आस-पास पाया जाता है, क्योंकि तेजाजी के मुख्य धामों में से एक डुगारी भी है। यह डुगारी बूँदी राज्य मे है। मदिर में शिलालेख नहीं, इसलिये इस विषय में अधिक नहीं कहा जा सकता। हाँ, एक पनेर मेवाड़ राज्य में भी है। उसका नाम पदेर है। यह बनास नदी के किनारे जहाजपुर से पश्चिम की ओर दो-तीन कोस पर

होगा। परंतु इस जगह पहुँचने के लिये राजमहल के निकट बनास उतरने की आवश्यकता नहीं।

मुंशीजी के अनुमान मे तेजा को साँप डसने की घटना कहीं पनेर के आस-पास की ही पाई जाती है, और हाड़ौती के गानेवालों ने तेजा की पूजा के पर्वतसर, उकलाना और डुगारी—ये तीन मुख्य पीठ बतलाने के सिवा किसी खास जगह का पता नहीं दिया है। संभव है कि यह जगह उकलाना हो। परंतु उकलाना किस राज्य में है, सो अभी तक मालूम नहीं हो सका। रूपनगर से पनेर जाते समय गानेवालों ने तेजा के लिये जो मार्ग बतलाया है, उस पर गौर करने से निश्चय होता है कि जाती बार जिस जगह उसे साँप के दर्शन हुए थे, वह बनास नदी और रूपननगर के बीच में है। साँप ने तेजा को अपने रहने का जो स्थान बतलाया, उस जगह ऊँचे और नीचे चौरे बतलाए गए हैं। चौरे रणभूमि में काम आनेवाले वीर पुरुषों के लिये अथवा राजा तथा राजपुरुषों के लिये बनवाए जाते हैं। पता लगानेवाले उकलाने की खोज करते समय यदि जाँचना चाहें, तो इसे भी देख सकते हैं।

मुंशी देवीप्रसादजी की खोज के अनुसार तेजा के आत्म-विसर्जन का स्थान पनेर है, और इसीलिये वहाँ तेजा का

पूजन भाद्र शुक्ल १० को होता था। किंतु किशनगढ़ राज्य के हासिल (?) से कष्ट पाकर मारवाड़ के जाट और गूजर पनेर से तेजा की मूर्ति उखाड़कर पर्वतसर ले गए। वहाँ अब बड़ा भारी मेला होता है, और गाय-बैलों की बिक्री होती है। संभव है कि यह बात सत्य हो। परंतु जब पर्वतसर और रूपनगर का फासला केवल २ या ३ कोस है, तब रूपनगर से उखाड़ ले जाने और ससुराल पनेर की होने से उसके नाम की अटकल लगाई गई हो, तो कुछ आश्चर्य नहीं। अब यों तो तेजा-दशमी का मेला बड़े-बड़े गाँवों में सब जगह होता है, किंतु पर्वतसर, केकड़ी और डुगारी ये तीन स्थान मुख्य हैं। यहाँ मेले के ब्याज से खूब व्यापार भी होता है।

तेजा का चरित्र समाप्त करने से पूर्व अब एक ही बात शेष रह गई है। उसके चरित्र में चमत्कार भी है और उत्कृष्ट गुणों का समुदाय भी। जो चमत्कार के उपासक हैं, वे राजपूताने के लाखों आदमी अपने अटल विश्वास से उसकी भक्तिपूर्वक पूजा करके सर्प-दंश के भय से मुक्त होते हैं। सर्प-दंश के प्राणघातकारी विष के लिये यदि राजपूताने में कोई औषध है, तो तेजाजी की डसी, और मंत्र है, तो उसका नाम। खैर, जो इस प्रकार के अलौकिक चमत्कार के उपासक हैं, वे प्रसन्नता से उसकी पूजा करके अपने-अपने स्वजनों के और

सर्वसाधारण के प्राणों की रक्षा करें। आजकल के अविश्वास और अश्रद्धा के जमाने में जब हैदराबाद के निज़ाम स्वर्गवासी महबूबअलीख़ाँ साहब के नाम लेने से सर्प-विष दूर हो सकता था, तब तेजस्वी तेजा के नाम से क्यों न हो ! किंतु मैं चमत्कार का उपासक नहीं, गुणों का पूजक हूँ। तेजा ने अपने उत्कृष्ट चरित्र से साबित कर दिया है कि कैसे एक क्षुद्रातिक्षुद्र मनुष्य भी अपनी आत्मशक्ति से, अपना आत्म-विसर्जन करके अपने सर्वस्व और प्राणों की बलि चढ़ाकर मनुष्य से देवता बन सकता है। "नर से नारायण" बनने के विशाल उद्योग का यह एक छोटा-सा नमूना है।

तेजा सचमुच ही प्रतिज्ञापालन, सत्यनिष्ठा और परोपकार का आदर्श था। एक खेतिहर अपढ़ जाट होने पर भी क्षत्रियत्व उसके अंतःकरण में ठसाठस भरा हुआ था। यदि उसके मन में पराक्रम की परिसीमा न होती, यदि उसका अंतःकरण परोपकार-व्रत का व्रती न होता, तो वह कभी डेढ़ सौ आदमियों से अकेला न भिड़ पड़ता। यदि उसे अपनी जान प्यारी होती, तो "काने बछड़े" को छुड़ा लाने के लिये दुबारा क्यों जाता ? यदि उसका शरीर और उसका अंतःकरण सत्यनिष्ठ न होता, तो अपनी प्रतिज्ञा पालने के लिये साँप के पास जाकर अपने प्राणों की पूर्णाहुति ही क्यों